साहित्य

बसवेश्वर

एच० थिप्पेरुद्रस्वामी

भारतीय साहित्य के निर्माता

भारतीय साहित्य के निर्माता

बसवेश्वर

लेखक
एच० थिप्पेरुद्रस्वामी
अनुवादक
शिवकिशोर त्रिवेदी

साहित्य अकादेमी

Basaveshwara : Hindi translation by Shiv Kishore Trivedi of H. Thipperudraswamy's monograph in English. Sahitya Akademi, New Delhi (1982), Price Rs. 4.

© साहित्य अकादेमी
प्रथम संस्करण : १९८२

साहित्य अकादेमी

प्रधान-कार्यालय

रवीन्द्र भवन, फ़ीरोज़शाह रोड, नई दिल्ली-११०००१

क्षेत्रीय कार्यालय

ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता-७०००२९
१७२, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई-४०००१४
२९, एलडाम्स रोड (दूसरा तल्ला), तेनामपेठ, मद्रास-६०००१८

मूल्य : चार रुपये

मुद्रक: रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

यदि आप बोलते हैं तो आपके शब्दों को
मोती होना चाहिए जो एक सूत्र में गूंथे हुए हों।
यदि आप बोलते हैं तो आपके शब्दों को
माणिक से निकलती हुई कांति की भांति होना चाहिए।
यदि आप बोलते हैं तो आपके शब्दों में
आकाश-विभाजक पारदर्शी दमक होनी चाहिए।
यदि आप बोलते हैं तो महान भगवान अवश्य कहें
कि हां, हां, यह अति सत्य है।
किन्तु आपके शब्द से यदि आपकी कृति भिन्न है
तो कूडल संगम आपकी चिन्ता करेंगे क्या ?

—बसवेश्वर

क्रम

जीवन कथा	९
भक्ति-भंडारी	१८
एक क्रांतिकारी संत	२९
कायक का संदेश	४१
एक महान् कवि	५०

जीवन कथा

पहले की अपेक्षा मानवीय समस्याएं आज अधिक जटिल हैं। मानव ने, निस्संदेह, अभूतपूर्व ज्ञान और शक्ति प्राप्त कर ली है; किन्तु इन्होंने अपूर्व परिवर्तन उत्पन्न कर दिए हैं और फलस्वरूप अस्तव्यस्त जीवन और भी अस्तव्यस्त हो गया है। हमसे संबंधित प्रत्येक वस्तु प्रवाह की स्थिति में है। इस दुर्दशा में आध्यात्मिक उपचार की आवश्यकता हमारे इतिहास में पहले कभी की अपेक्षा आज अधिक प्रखरतापूर्वक अनुभूत होती है। प्रतिदिन के नीरस वातावरण की लीक से अपने-आपको मुक्त करने में हमें जिस आध्यात्मिक बल की आवश्यकता है उसे प्राप्त करने की विधि हमें विश्व के महान संत और कवि ही सिखा सकते हैं। कर्नाटक के बसवेश्वर या बसवण्णा एक संत, कवि और महान समाज-सुधारक थे। उनकी गणना भारत के महान आध्यात्मिक शिक्षकों में होती है।

आधुनिक भारत में धार्मिक जागृति और सामाजिक परिवर्तनों के संदर्भ में बसवेश्वर का संदेश एक विशेष महत्व प्राप्त कर लेता है। आज का भारतीय समाज, अपने प्रजातंत्र और राष्ट्रीयता के विचारों और अपने शिक्षा-प्रसार तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बल देते हुए अपने स्वरूप को बदल रहा है। यह विश्व की मुख्य विचारधारा से प्रभावित है। हमारे विचार-आदर्श इतने व्यापक रूप से बदल रहे हैं कि हमारे कुछ प्राचीन मूल्यों, स्थापनाओं और रीतियों, जातियों, आस्थाओं और कर्मकांडों तथा हमारे अंधविश्वासों के लिए जीवित रहना असंभव प्रतीत होता है। बसवण्णा आठ सौ वर्ष पूर्व हुए थे किन्तु वे हमें पूर्णतयः आधुनिक और व्यावहारिक रूप में आकर्षित करते हैं और इसलिए उनकी शिक्षा आज भी संगत है। यदि उस शिक्षा का अनुसरण किया गया होता तो भारतीय समाज का चित्र आज बहुत भिन्न होता। अपने धर्म के मार्ग में बसवण्णा ने अनेक आधुनिक देव-दूतों जैसे स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और गांधी जी का पूर्वानुमान किया है। उन्हें कर्नाटक के ही नहीं समस्त भारत के नवयुग का देवदूत कहा जा सकता है।

उनकी जीवन-कथा का अध्ययन आरंभ करने के पूर्व उनके समय की धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों और समकालीन राजनीतिक स्थिति पर विचार कर लेना सहायक होगा।

इतिहास के प्रारंभिक काल से कर्नाटक ने अपना मस्तिष्क विश्व के समस्त धर्मों के लिए खुला रखा है। पुरालेखों के प्रमाण से स्पष्ट है कि ईसाई युग के बहुत पूर्व आर्य धर्म ने देश भर को प्रभावित कर लिया था। इसे राजकीय संरक्षण मिला था। इस हिन्दू धर्म के साथ-साथ यह प्रतीत होता है कि प्राचीन कर्नाटक में पूजा के स्थानीय रूप भी जैसे सर्प पूजा, वृक्ष पूजा या कई देवियों की पूजा आदि प्रचलित थे। इसके पश्चात् जैन और बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ। किन्तु बौद्ध धर्म यहां उत्तर भारत की भांति स्थापित और जनप्रिय कभी नहीं हो पाया। जैन धर्म की तुलना में यह शीघ्र ह्रासोन्मुख हो गया। जैन धर्म कर्नाटक पर राज्य करने वाले सभी प्रमुख राजवंशों का संरक्षण प्राप्त कर सका था। इसीलिए कर्नाटक संस्कृति में इसका योगदान अधिक महत्वपूर्ण है।

बारहवीं शताब्दी से जैन धर्म की अवनति आरंभ हो गयी। आठवीं शताब्दी के आसपास किसी समय दक्षिण भारतीय क्षितिज पर एक विराट व्यक्तित्व का उदय हुआ। वे शंकराचार्य थे। केरल में जन्म लेकर उन्होंने समस्त भारत का भ्रमण किया। उन्होंने अद्वैत मत का उपदेश दिया और वैदिक धर्म का नवीनीकरण किया। उन्होंने अपना पहला मठ कर्नाटक के शृंगेरी में स्थापित किया।

कर्नाटक में प्रथमतम और अत्यंत व्यापक रूप में प्रधान धर्म शैववाद था। इसमें कई संप्रदाय थे जैसे पशुपत, कालमुख और कापालिक। कश्मीर और तमिल के शैववाद भी कर्नाटक में प्रविष्ट हुए और शैव संप्रदायों को एक बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित किया। कुछ कालमुख शिक्षक और धार्मिक मठों के प्रमुख महान विद्वान थे और कर्नाटक में वे बहुत जनप्रिय थे।

बारहवीं शताब्दी के आरंभ में रामानुज का आगमन हुआ जिन्होंने विशिष्ट अद्वैत का प्रचार किया। उन्होंने तमिलनाडु इसलिए छोड़ दिया कि यहां चोल राजा द्वारा वैष्णवों का उत्पीड़न हो रहा था। अपनी स्वतंत्रता की परंपरा के अनुसार कर्नाटक ने उनका स्वागत वैसे ही किया जैसे पहले शंकर का किया था। होयसल राजा विष्णु वर्धन उनका शिष्य हो गया। तब से जैन धर्म का प्रभाव घटने लगा। वैदिक धर्म ने अपने दावे को एक बार फिर दोहराया।

किंतु इस समय तक आकर शंकर और रामानुज जैसे आचार्यों की शिक्षाओं के बावजूद वैदिक धर्म ने बिगड़कर मतान्ध अनम्यताओं का रूप धारण कर लिया था। मतांध प्रथाओं ने उपनिषदों का प्रतापी दर्शन भी धूमिल कर दिया था। अंधी आस्थाएं और अर्थहीन तथा अंधविश्वासी कर्मकाण्ड समाज की परजीवी उपज हो गए थे। बलिदान करने की उपासना व्यापक रूप में प्रचलित थी।

चतुर्वर्ण प्रणाली—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—समाज के चार पक्षीय विभाजन ने प्रारंभ में, जब इसकी भावना को समुचित रूप में समझा गया था, कदाचित् कुछ भलाई की होगी। किन्तु आगे चलकर इसके कारण समाज खंडित

हो गया। अपने मूल रूप में हो सकता है कि यह सामाजिक एकात्मता का एक सिद्धांत रहा हो। किंतु अंततोगत्वा ह्रासोन्मुख जातिप्रथा में इसका अन्त हो गया। इस घृणित प्रथा का सारभूत सिद्धांत जन्म पर आधारित विभाजन है जिसने एकता के सभी विचारों को नष्ट कर दिया है।

उच्च वर्गों और शूद्रों के बीच तीव्र भेदभाव किया जाता था और शूद्रों को भी अनगिनत उपजातियों और उपसमुदायों में विभाजित कर दिया गया था। धर्म थोड़े से विशेष सुविधा प्राप्त लोगों का एकाधिकार बन गया था। शूद्रों और महिलाओं को वैदिक ज्ञान से वंचित रखा जाता था। समस्त धर्म ग्रंथों का लेखन और प्रतिपादन इस दृष्टिकोण के समर्थन में किया गया था। इस प्रकार सामाजिक अन्याय पर धार्मिक स्वीकृति की मुद्रा अंकित हो गयी थी। इसके साथ छुआछूत की अपकीर्ति जोड़ दी गयी। अछूतों की दशा दयनीय थी। उनके साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया जाता था। हिन्दू समाज अपनी समस्त उच्च सांस्कृतिक परंपराओं और आध्यात्मिक वैभव के बावजूद जनसाधारण की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को पूरा करने में बुरी तरह से असफल हो गया था। आवश्यकता की इस घड़ी में बसवेश्वर घटनास्थल पर प्रकट हुए।

संत बसवेश्वर की ऐतिहासिक सामग्री पर आधारित विश्वसनीय जीवनी अभी तैयार नहीं हुई। उनकी जीवनी के पुनर्कल्प के महत्वपूर्ण स्रोतों में समकालीन शिलालेख, धार्मिक साहित्य जैसे वीर शैव लेखकों द्वारा रचित पुराणों, बसवण्णा की अपनी और चन्नावसवण्णा, अल्लम प्रभु, सिद्धराम, अक्का महादेवी और 'अनुभव मंडप' के अन्य सदस्यों की उक्तियां सम्मिलित हैं।

भाग्यवश, बसवण्णा से संबंधित दो शिलालेख खोज लिए गए हैं। बसवण्णा के जीवन संबंधी कुछ विवरण के विश्वसनीय प्रमाण के रूप में उनका मूल्य असीम है। समस्त वीर शैव कृतियों में कन्नड़ की 'बसव राजदेवर रगले' और तेलगू की 'बसवपुराण' बहुत महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि इनके लेखक क्रमशः हरिहर और पालकुरिके सोमनाथ बसवण्णा के प्रायः समकालीन थे। भीम कवि की 'बसवपुराण', लक्कना डण्डेसा की शिवतत्व चिन्तामणि' और 'अमलावसव चरित्र' जो सिंगिराज की 'सिंगिराज पुराण' के रूप में विख्यात है, पर भी विचार किया जा सकता है। उनका विचार इतिहास लिखने का नहीं बल्कि भक्तिभाव पूर्वक देवता बनाते हुए बसवण्णा की गौरवगाथा गाने का था। किन्तु फिर भी इन कन्नड कृतियों का सावधानीपूर्वक अध्ययन हमें कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का निर्णय करने में सहायता देगा। यहां एक संक्षिप्त जीवन-चरितात्मक शब्दचित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इसका आधार समस्त उपलब्ध स्रोत हैं और विवादास्पद विवरणों को छोड़ दिया गया है।

बसवण्णा का जन्म एक उच्च ब्राह्मण परिवार में इंगालेश्वर बगेवाडी (इस

समय कर्नाटक के बीजापुर जिले में) नामक स्थान पर सन् ११३१ ई० के लगभग हुआ था। उनके पिता मदिराज या मदारस बगेवाडी अग्रहार के प्रधान थे और 'ग्रामनिमानी' कहे जाते थे। उनकी पत्नी मदालंबि या मदांबि एक धर्मनिष्ठ महिला थीं। और बगेवाडी के प्रमुख देवता नंदीश्वर की महान भक्त थीं। बसवण्णा उनकी तीसरी संतान थे। उनके एक बड़े भाई थे जिन्हें देवराज और एक बड़ी बहन थीं जिन्हें नागम्मा कहा जाता था। इन दोनों ने बाद में बसवण्णा की धार्मिक और सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लिया था।

बसवण्णा का जन्म होते ही जटावेदमुनि, जिन्हें इशान्य गुरु भी कहा जाता था, कूडल संगम से एक प्रतीकात्मक लिंग के साथ उन्हें आशीर्वाद देने और नवीन पथ पर दीक्षित करने आए।

बालक रूप में भी बसवण्णा ने महानता और वैयक्तिकता के लक्षण प्रदर्शित किए। वे स्वतंत्र आत्मा के साथ एक असमय प्रौढ़ बालक थे। पारंपरिक ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर उन्हें अपने घर और पड़ोस में उन धार्मिक अनुष्ठानों और कठोर रूढ़ियों पर विचार करने के अवसर मिले जिनका रुढ़िवादियों द्वारा सतर्कतापूर्वक पालन किया जाता था। उन्होंने देखा कि धर्म के नाम पर मनुष्यों और उनके मस्तिष्कों पर अंधविश्वासों और रुढ़ सिद्धांतों का ज्यादा प्रभाव है। मंदिर भी शोषण के केन्द्र बन गए थे। युवा बसव ने इन विषयों पर चिंतन किया।

उन्होंने आठ वर्ष की अवस्था में अपने जीवन के पहले संकट का सामना किया। जब उन्होंने देखा कि माता-पिता उनके उपनयन या यज्ञोपवीत या दीक्षा संस्कार की तैयारी कर रहे हैं तो उसका दृढ़तापूर्वक विरोध किया। उनका तर्क यह था कि दीक्षा तो जन्म के ही समय लिंग के साथ हो चुकी है। जब उनके पिता ने आग्रह किया कि उन्हें इस संस्कार को झेलना ही होगा तो उन्होंने माता-पिता का घर छोड़ दिया और कूडल संगम की ओर चल पड़े।

हरिहर ने इस घटना का किंचित् भिन्न वृत्तान्त प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि संस्कार संपन्न होने के बाद बसव ने सोलह वर्ष की अवस्था में उपनयन का परित्याग किया था और घर छोड़कर कूडल संगम चले गए थे। किन्तु दूसरे लेखक एकमत हैं कि संस्कार सर्वथा किया ही नहीं गया। अतः इतना तो स्पष्ट है कि वे अपने उपनयन और उसके पालन के प्रश्न पर समझौता नहीं कर सके क्योंकि उपनयन जातिगत धर्मतंत्र का एक प्रतीक मात्र बन गया था। लिंग धारण करने को वह जाति का संकेत नहीं मानते थे, वह तो उपासना का एक उपाय है। जाति, पंथ या योनि के किसी भेदभाव बिना कोई भी व्यक्ति इसे धारण कर सकता है।

इस प्रकार उस प्रारंभिक अवस्था में ही उन्हें यह ज्ञात हो गया था कि शिव का सार्थक प्रतीक धार्मिक और सामाजिक समता के प्रचार का एक सशक्त साधन

बन सकता है। अतएव वे वीरशैववाद की ओर आकर्षित हो गए।

इस संप्रदाय में शरीर पर लिंगधारण को दीक्षा या सूत्रपात माना जाता था। संगम के निवास ने उनके विचारों को एक नयी जीवनशक्ति और उन्हें एक नयी दृष्टि प्रदान की थी।

कूडल संगम कृष्णा नदी और उसकी सहनदी मलप्रभा के संगम पर स्थित है। उन दिनों यह ज्ञान के महान केन्द्रों में एक था। बसवण्णा ने अपने बालकाल में संगम की महानता के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। संभवतः वे इस पवित्र स्थान पर पहले भी आए थे। यह स्मरण करना भी आवश्यक है कि ईशान्य गुरु जो इस ज्ञानपीठ के कुलपति या स्थानपति थे, वही गुरु थे जिन्होंने बसवण्णा को लिंग के साथ दीक्षित किया था। अतएव जब उन्होंने सामाजिक बंधनों को तोड़कर प्रकाश की खोज में अपना घर छोड़ दिया तो स्वभावतः वह कूडल संगम की ओर चल पड़े। उनकी बड़ी बहन नागम्मा उनके प्रति बहुत अधिक ममतामयी थीं। अतः उनके साथ वे भी संगम आ गयीं। उस समय वे विवाहित थीं। सिंगिराज के अनुसार उनके पति शिव स्वामी कूडल संगम के निवासी थे। यह अपनेआप में बड़ा प्रसन्नतादायक संयोग था।

संगम एक आदर्श स्थान था। यहां बसवण्णा अपने अध्ययन का अनुसरण और इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति कर सकते थे। ईशान्य गुरु संभवतः शैव संप्रदाय की कालमुख विचारधारा के थे। वे वैदिक बलिप्रदानों और अनुष्ठानों की अपेक्षा लिंगधारण को प्राथमिकता देते थे और उदार दृष्टिकोण के महान विद्वान थे। उन्हें बसवण्णा में असाधारण चरित्र का आश्वासन मिला। उनके समर्थ मार्गदर्शन में बसवण्णा ने कठिन अध्ययन और आध्यात्मिक मनन में कुछ वर्ष बिताए। उनके जीवन की यह अवधि अत्यन्त सार्थक थी। यहीं पर उनके भविष्य की योजनाओं के आकार-प्रकार और पंथ निर्धारित हुए थे।

उन्होंने वेदों, उपनिषदों, आगमों, पुराणों और काव्यों के साथ-साथ विभिन्न धार्मिक पंथों और दर्शनों की व्याख्याओं का व्यापक अध्ययन किया। इनका अध्ययन उन्होंने आलोचनात्मक दृष्टिकोण से किया। उनके क्रान्तिकारी मस्तिष्क ने उन्हें आकर्षित करने वाले विचारों और आदर्शों को कृतियों में परिणित कराना प्रारम्भ कर दिया। स्वयं एक महान भक्त होने के कारण उन्होंने शैव संतों के भक्ति-गीतों को अति उत्कण्ठा के साथ कंठस्थ कर लिया। जैसे-जैसे उन्होंने अपने धार्मिक उत्साह को वचनों के रूप में व्यक्त करना चाहा उनका कवि विकसित होता गया।

उन्होंने संगम में कदाचित् लगभग १२ वर्ष व्यतीत किए। इसके बाद उनके जीवन में संक्रान्ति काल आ गया। उनके मामा बलदेव कालचूर्य राजवंश के राजा बिज्जल के अधीन भंडारी या वित्तमंत्री थे। उन्होंने अपनी पुत्री का

विवाह बसवण्णा के साथ करने का प्रस्ताव रखा। किन्तु बसवण्णा अपने आध्यात्मिक लक्ष्य के उच्च आदर्श के प्रति समर्पित थे। उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार करने में संकोच व्यक्त किया। किन्तु ईशान्य गुरु ने उन्हें विश्वास दिलाया कि उनको मानव जाति के लिए अपने नवीन संदेश के साथ सांसारिक जीवन में भाग लेना चाहिए।

बसवण्णा संगम से मंगलवाड (आधुनिक मंगलवेध, महाराष्ट्र में पंडरपुर के निकट) चले गए जहां राजा बिज्जल के तारडावडी राज्य की राजधानी थी। नागम्मा, शिवस्वामी और उनका पुत्र चैन्नबसवण्णा जो ८ या १० वर्ष का था, बसवण्णा के साथ यहां आ गये। बसवण्णा ने बलदेव की पुत्री गंगाम्बिके और राजा बिज्जल की धर्मबहन नीलाम्बिके से भी विवाह किया। हमें ज्ञात नहीं है कि किन परिस्थितियों में उन्हें नीलाम्बिके से विवाह करना पड़ा। किन्तु इस तथ्य के विषय में कोई मतभेद प्रतीत नहीं होता कि उनकी दो पत्नियां थीं। हरिहर के अनुसार उनके नाम गंगाम्बिके और माया देवी थे।

वह दो वर्षों तक मंगलवाड में रहे और अपनी योग्यता द्वारा सत्तावान और प्रमुख बन गए। बलदेव के स्थान पर भंडारी का पद ग्रहण करने में वे सर्वाधिक उपयुक्त पाए गए।

इस समय कर्नाटक की राजनीतिक स्थिति बदल रही थी। कल्याण (जिसे अब बसव कल्याण कहा जाता है जो कर्नाटक के बीडर जिले में है) के चालुक्य तेलप्पा तृतीय के सम्राट बनने के पश्चात् दुर्बल होते जा रहे थे। बिज्जल ने, जो चालुक्य साम्राज्य का केवल एक सामन्त था, स्थिति का लाभ उठाया और चालुक्य सिंहासन पर आरूढ़ हो गया तथा कल्याण सम्राट बन बैठा। उसने बसवण्णा को कल्याण जाने और साम्राज्य का मंत्री पद स्वीकार करने के लिए सहमत किया।

बसवण्णा राजनीतिक उथल-पुथल में कोई रुचि नहीं रखते थे। उन्हें सत्ता प्राप्ति की कोई इच्छा भी नहीं थी। किन्तु उन्होंने कल्याण जाना और भंडारी का कार्यभार संभालना इसलिए स्वीकार कर लिया कि इस प्रकार उन्हें अपने उद्देश्य का प्रभावशाली अनुसरण करने का पर्याप्त अवसर मिलेगा।

वे संभवतः सन् ११५४ ई० में कल्याण गए और सन् ११६४ ई० में बिज्जल के राज्य का अंत होने तक वहां रहे। कल्याण निवास के १२-१३ वर्षों की अल्प अवधि में उनकी उपलब्धियां असाधारण हैं।

वे धार्मिक और सामाजिक गतिविधियों में कूद पड़े। कूडल संगम में परिकल्पित अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने ज्वलन्त उत्साह के साथ कार्य किया। जाति, धर्म या योनि के भेदभाव बिना धर्म के द्वार सबके लिए खोल दिए गए। उन्होंने अनुभव-मंडप नामक एक सामाजिक-धार्मिक विद्वत्परिषद् की

स्थापना की जिसने देश भर के संतों और आध्यात्मिक जिज्ञासुओं को आकर्षित किया। उनमें से कुछ ये हैं : कर्नाटक के विभिन्न भागों से अल्लम प्रभु, सिद्धराम, मडिवाल माचय्या, अंबीगर, चौडय्या और महाराष्ट्र से उरीलिंगदेव; आंध्र से, बहुरूपी चौडय्या और सकलेसा मादारस, आदैय्या और सोघाला बाचरस सौराष्ट्र (गुजरात) से और कश्मीर से मौलिगेय मारय्या और उनकी पत्नी महादेवम्मा।

जन जाग्रति के मार्मिक उद्देश्य में धर्म एक जीवित शक्ति बन गया। धर्म को अपने इतिहास में किसी अन्य समय पर ऐसा वैभव और ऐसी चमत्कारी शक्ति कभी नहीं प्राप्त हुए थे। कहा जाता है कि बसवेश्वर ने अनेक चमत्कार दिखलाए। किन्तु महानतम चमत्कार यह है कि उन्होंने जनसाधारण और परित्यक्तों को आध्यात्मिक सिद्धि की नैसर्गिक ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया।

उनके क्रान्तिकारी संदेश और उद्देश्यों ने रूढ़िवादियों में हलचल उत्पन्न कर दी। उन लोगों ने बसवण्णा का विरोध करने के लिए अपनेआप को संगठित किया। उन्होंने अनेक दोषारोपण किए और बसवेश्वर के संबंध में मनगढ़न्त कहानियां तैयार कीं और प्रयत्न किया कि बिज्जल की दृष्टि से उन्हें गिरा दिया जाये।

बसवेश्वर पर अभियोग लगाया गया था कि उन्होंने अपने भक्तों के भरण-पोषण के लिए राजकोष का दुरुपयोग किया है। किन्तु जब उन्होंने राज्य का पूरा लेखा-जोखा राजा के समक्ष प्रस्तुत किया तो दोषारोपण असत्य और आधारहीन मिथ्यापवाद सिद्ध हुए।

बसवण्णा का आकर्षक व्यक्तित्व बड़ी-बड़ी बाधाओं को भी पार कर गया। उनका उद्देश्य पूर्वापेक्षा अधिक उत्साह के साथ प्रारम्भ रहा। वह अपनी परा-काष्ठा पर तब पहुंचा जब भूतपूर्व ब्राह्मण की पुत्री और भूतपूर्व अछूत हरलय्या के पुत्र का विवाह हुआ। रुढ़िवादियों के अनुसार यह वर्णसंकर अर्थात् वर्णों का अपमिश्रण था, जो धर्म के विरुद्ध था। अतएव क्षुब्ध और आगबबूला होते हुए उन लोगों ने हंगामा मचाया। उन्होंने राजा से, जो वर्णाश्रम धर्म का अभिभावक समझा जाता था बसवण्णा के विरुद्ध परिवाद किया।

किन्तु बसवण्णा ने तथाकथित वर्णों की चिन्ता कभी नहीं की। उन्होंने वर्ण विभाजन का उन्मूलन करने के लिए जीवन-पर्यन्त संघर्ष किया। उनके अनुसार वह विवाह सर्वथा समुचित था। उनका तर्क यह था कि शरण की छत्रछाया में एक बार आ जाने के बाद न मधुवरस ब्राह्मण रहा और न हरलय्या अछूत। जब लिंग धारण करके वे भक्त बन गए तो वे वर्णों से श्रेष्ठ हो गए। उत्तर गांधी युग के हम लोग इस तर्क के औचित्य को समझ सकते हैं। किन्तु बारहवीं शताब्दी का समाज इस प्रकार के उग्र विचार को अंगीकार नहीं कर सकता था। कहा जा

सकता है कि बसवण्णा अपने समय से आठ सौ वर्ष आगे थे।

बसवण्णा के विरोधी प्रबलतर हो गए। बिज्जल को निहित स्वार्थों के दबाव में झुकना पड़ा। निर्दोष मधुवरस और हरलय्या को निर्दयतापूर्वक उत्पीड़ित किया गया। उन्हें हाथी के पांवों में बांध कर मृत्यु होने तक घसीटा गया।

इस अत्याचार ने शरणों को स्तब्ध कर दिया। उनमें कुछ बहुत क्रुद्ध हुए और प्रतिशोध के लिए प्रचण्डतापूर्वक अभिवचन करने लगे। बिज्जल द्वारा चालुक्य सिंहासन पर अधिकार कर लेने के समय से जो राजनीतिक अंतर्धारा विकसित हो रही थी, अब प्रबलतर होने लगी। बिज्जल के शत्रुओं ने स्थिति का लाभ उठाया। बिज्जल का छोटा भाई मल्लुगी या मल्लिकार्जुन बनवासी के राज्यपाल कसापैय्या के साथ मिल गया और बिज्जल को अपदस्थ करने तथा चालुक्य सिंहासन पर स्वयं आसीन होने के प्रयत्न करने लगा। बिज्जल के पुत्र रायमुरारी सौवीदैव, संकमा और सिंहना भी राजमुकुट के प्रतिद्वंदी थे। ये सब शक्तियां अवसर की प्रतीक्षा कर रही थीं। जब धार्मिक उथल-पुथल पैदा हुई तो एक षडयंत्र रचा गया और बिज्जल की हत्या संभवतः उसके राजनीतिक विरोधियों द्वारा कर दी गयी। किन्तु कलंक शरणों पर लगा दिया गया।

कल्याण में जब ऐसे अत्याचार हो रहे थे तो बसवण्णा क्या कर रहे थे? यदि वे कल्याण में होते तो ऐसी बातें नहीं हो सकती थीं। उन्होंने वह मृत्युदण्ड स्वयं ले लिया होता जो मधुवरस और हरलय्या को दिया गया था। उन्हें ज्ञात नहीं था कि स्थिति इतनी शीघ्रतापूर्वक बदल जाएगी। सभी कारणों से यह विश्वास होता है कि संभवतः उपद्रव से दूर रहने और कुछ दिन शान्तिपूर्वक बिताने के लिए वे कूडल संगम चले गए थे। किन्तु स्थिति इतनी शीघ्रतापूर्वक बिगड़ी कि उन्हें कुछ करने का अवसर नहीं मिला और वे परिस्थितियों के षडयन्त्र के असहाय शिकार हो गए।

शरणों ने कल्याण छोड़ दिया और विभिन्न दिशाओं में छिन्न-भिन्न हो गए। चेन्नबसवण्णा की प्रधानता में, गंगाम्बिके, नागम्मा, शिवस्वामी और अन्य जनों का एक प्रमुख संभाग उत्तर कनारा में गोकर्णी के निकट उलावी चला गया। बसवण्णा के एक निष्ठावान शिष्य अप्पण्णा के साथ नीलांबिके कूडल संगम आ गयीं और बसवण्णा के अंतिम दिनों में उनके साथ रहीं।

बसवण्णा केवल समाज सुधारक नहीं थे अपितु एक देवदूत और महान रहस्यवादी थे। वे उस नैसर्गिक प्रबंध का अनुभव करते थे जो इन घटनाओं के माध्यम से चल रहा था। उन्होंने सोचा कि उनका लक्ष्य पूरा हो चुका है और वे उन भगवान संगमेश्वर के पास वापस जा सकते हैं जिनसे उन्हें नैसर्गिक इच्छा का एक यंत्र बनने का आदेश प्राप्त हुआ था। उन्होंने संगमेश्वर के साथ समरस्य

अर्थात् एकतत्वीय सम्मिलन संभवतः सन् ११६७ ई० में प्राप्त किया। उस समय उनकी अवस्था केवल ३६ वर्ष थी।

वसवण्णा के जीवन का यह संक्षिप्त इतिहास केवल एक औपचारिक लेखा-जोखा है। देवदूतों और संतों का सच्चा जीवन चरित्र तो उनके आंतरिक संसार, उनके आध्यात्मिक जीवन, उनके दर्शन, सिद्धि और लक्ष्य के विकास का इतिहास होता है। अगले अध्यायों में हम इसे समझने का एक प्रयत्न करेंगे।

भक्ति-भंडारी

बसवण्णा सर्वाधिक सक्षम भंडारी—राजकोषाधिपति—के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। कल्याण का राजा बिज्जल उनका प्रशंसक बन गया था। किन्तु आध्यात्मिक अनुसरण के राज्य में वे भक्ति-भंडारी थे, भक्ति की बहुमूल्य निधि के परिरक्षक थे।

शरणों में हमें भिन्न-भिन्न प्रकृति के व्यक्ति मिलते हैं। अल्लम प्रभु की साहसी आत्मा पर ज्ञान का प्रभुत्व था। उनके विचार क्रान्तिकारी थे और वे त्याग तथा तपस्या का जीवनयापन करते थे। चेन्नबसवण्णा कुशाग्र बुद्धि और गंभीर विद्वान थे। सिद्धराम मुख्यतः कार्यरत रहते थे और निस्वार्थ सेवा करते थे। वे कर्म-मार्ग के अनुयायी थे। उसी प्रकार अक्का महादेवी, मडिवाल माचय्या और अन्य जनों में अपनी-अपनी विशिष्ट वैयक्तिकता थी। उन सब में बसवेश्वर को भक्ति का सजीव अवतार माना जाता था।

चेन्नबसवण्णा कहते हैं—'बसव भक्ति की विपुल उपज है।' सिद्धराम घोषित करते हैं: 'बसव भक्ति के अवतार और आनंद के अवतार हैं।' मडिवाल माचय्या ने अपने एक वचन में विचारोत्तेजक रूप में कहा है :

चाहे जिस ओर देखो
दिखती है वही वल्लरी: बसवण्णा,
आप इसे उठाओ और देखो
एक गुच्छा, वही लिंग,
गुच्छे को उठा लो, और देखो,
उसमें भक्तिरस लबालब हो रहा है।

बसवण्णा के वचनों को जब कभी निचोड़िए, भक्ति रस निकलता है। सौभाग्य से उनके लगभग एक हजार वचन हमें प्राप्त हुए हैं। ये वचन एक अत्यन्त विचित्र मन की आध्यात्मिक यात्रा के अंकित अनुभवों का भंडार हैं। उनके आध्यात्मिक लक्ष्य के सभी चरणों—मन की व्याकुल वेदना से नैसर्गिक शक्ति की सिद्धि से उत्पन्न निर्मल प्रशान्ति तक—को उनके वचनों में विश्वसनीय और सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। ये वचन जिज्ञासुजनों के लिए भक्ति मार्ग की जीवित नियमावली हैं।

नारद भक्तिसूत्र के अनुसार, 'भक्ति का स्वभाव उच्चतमप्रेम है।' यह किसी स्वार्थी इच्छा के बिना भगवान से अटल प्रेम है। किन्तु जब तक हमें दृष्टिगोचर सांसारिक पदार्थों में महान संतोष और आनंद मिलता है, हम अदृश्य दैवी शक्ति की ओर उन्मुख नहीं हो सकते। हम हमेशा सांसारिक जीवन के क्षणिक आनंदों के पीछे पड़े रहते हैं। हम और कुछ नहीं, केवल अपने हृदयों की लालसा प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु केवल वह लोग जो आत्मा के अनन्त हितों को समझते हैं, सांसारिक आनंद से कुछ अधिक पाने के लिए लालायित होते हैं। यह दैवी असंतोष का स्वर भक्ति की दिशा में पहला पग है।*

बसवेश्वर के आरंभ के चिंतन में आध्यात्मिक जीवन के प्रति एक दैवी असंतोष मिलता है—

हे भगवान इस संसार ने
मुझे अपने फंद में पकड़ लिया है;
हे भगवान बचाओ, मुझे बचाओ
सारी योग्यता लुप्त हो चुकी है
दया करो, दया करो भगवान
कूडल संगम

वह उसी स्वर में कहते जाते हैं: 'इस संसार के राहु ने मुझे ग्रस लिया है, मुझ पर पूरा ग्रहण लग गया है। मैं सर्प के फन के नीचे एक मेंढक जैसा हूं। संसार के सर्प ने मुझे पंचपक्षीय अनुभूतियों के बिषैले दांत से डस लिया है। मेरा अपना मन मेरी नहीं सुनता। यह डाल पर बंदर की भांति उछलता-कूदता है।'

मेरा एक विचार है, इसका दूसरा,
मैं इस ओर खींचता हूं, यह दूसरी ओर खींचती है,
यह मुझे छेड़ती और क्षुब्ध भी करती है,
कठिन से कठिन परिश्रम के लिए;
और जब मैं भगवान कूडल संगम से
मिलने को आतुर होता हूं
यह मेरे पथ पर अंधकार कर देती है।
यह माया।

आनंद की एक तरंग में अपने आप को असीम संकट के लिए अनाश्रित कर

---

* यहां उद्धृत वचन एल० एम० ए० मैनेजैज और एस० एम० अंगादी द्वारा किये गए बसवण्णा के वचनों के अनुवाद से लिए गए हैं।

रहा हूं। मेरे हृदय में मत झांको। यह ग्रामीण गूलर जैसा है। मेरा जीवन घी की सनी तलवार की तीक्ष्ण धार को चाट रहे कुत्ते जैसा है। मैं अब उस पशु जैसा हो गया हूं जो एक दलदल में गिर पड़ा है। भगवान, हे भगवान, मैं पुकार रहा हूं, क्या आप मुझे उत्तर नहीं दे सकते ?

हाय; हाय; हे शिव
आप निर्दय हैं,
हाय; हाय; हे शिव
आप कृपा हीन हैं !
आपने मुझे जन्म क्यों दिया ?
स्वर्ग से अपरिचित
इस धरती पर घोर पीड़ा भोगने के लिए ?
आपने मुझे जन्म क्यों दिया ?
कूडल संगम मेरी सुनो
क्या आप मेरे स्थान पर
कोई वृक्ष या झाड़ी नहीं बना सकते थे ?

'क्या वृक्ष मुझसे अच्छे नहीं हैं ?' वे यात्रियों को कुछ नहीं तो छाया प्रदान करते हैं। बसवण्णा एक भक्त के पीड़ित मन की व्यथा इस प्रकार के शब्दों में उड़ेलते हैं।

वे इस आवश्यकता से अवगत हैं कि दैवी शक्ति से संबंध स्थापित करना चाहिए। किन्तु इसी के साथ-साथ वे अपनी सीमाओं से भी सखेद अवगत हैं। वे निराश नहीं होते। यह केवल प्रारंभिक चरण है जो आध्यात्मिक यात्रा में पहले प्रकट होता है। यह अग्नि-परीक्षा वे उल्लासपूर्वक पार करते हैं जिसे रहस्यवाद के पाश्चात्य विद्यार्थी 'आत्मा की काली रात्रि' कहते हैं। इतना ही नहीं, वह बढ़ते हुए यह घोषणा करने की अवस्था पर जा पहुंचते हैं :

यह मृत्यु लोक ईश्वर की टकसाल है;
जो जन यहां पुण्य अर्जित करते हैं, वहां भी करते हैं,
और जो जन यहां अर्जन नहीं करते, वहां भी नहीं करते,
हे कूडल संगम भगवान !

अब उनकी आस्था निर्मल आध्यात्मिक सिद्धि के पारदर्शी प्रताप के साथ चमकती है। वे अपने गुरु की कृपा से जीवन के अंतिम लक्ष्य की अनुभूति करते हैं और उस मार्ग की भी जिस पर उन्हें चलना है। भगवान में संपूर्ण निष्ठा के साथ वे उसके अंतर में शरण की याचना करते हैं :

तू मेरा पिता है; तू मेरी माता भी
तू ही मेरा कुल परिवार
तुझे छोड़कर कोई और सगा नहीं
हे भगवान कूडल संगम,
जैसे तू चाहे, मेरा उपयोग कर।

भक्ति की वैष्णव शाखा में यह अद्वितीय प्रेम और सर्वथा समर्पण, जिन्हें प्राप्ति और शरणागति कहा जाता है, इन्हें दैवी इच्छा का एक माध्यम बना देते हैं। ऐसा कुछ शेष नहीं रहता जिसे ये अपना निजी कह सकते हों।

मेरे शोक-विलाप तेरे हैं,
मेरे लाभ-हानि तेरे हैं,
मेरे सम्मान और लज्जा भी तेरे हैं
हे भगवान कूडल संगम !
लता को अपने फल का भार
कैसे अनुभूत हो सकता है ?

इस प्रकार भगवान के समक्ष अपने समर्पण द्वारा वे आत्मा की प्रारंभिक यंत्रणा का शमन करते हैं। अब वे भगवतकृपा की प्रभावकारिता के गीत गंभीर विश्वास के साथ गा सकते हैं—

हे भगवान, यदि तेरी इच्छा हो,
काठ से अंकुर फूट सकते हैं,
हे भगवान, यदि तेरी इच्छा हो,
बांझ गाय भी दूध देती है,
हे भगवान, यदि तेरी इच्छा हो,
विष अमृत बन जाता है,
हे भगवान, यदि तेरी इच्छा हो,
सभी वस्तुएं एक के आह्वान का पालन करती हैं;
हे भगवान कूडल संगम !

वह संसार के प्रत्येक पदार्थ में भगवान की शक्ति को पहचानने में समर्थ हैं। वह अपने अंतर के अहंकार को भगाते हैं और दैवी कृपा प्राप्त करने के लिए अपना हृदय खुला रखते हैं।

भक्ति मार्ग में अहंकार का विनाश करना एक अनिवार्य पग है। हम प्रत्येक पग पर "मैं" और "मेरे" के अवरोध तैयार करते हैं। सीमित "मैं" के नष्ट होने पर ही असीम और सार्वभौम "मैं" का जन्म होता है। अहंकार एक सहस्त्र-

मस्तक सर्प है। वह धन, दरिद्रता, सत्ता, कुलीनता और ज्ञान के रूप में भी अपने मस्तक उठाता है। जिज्ञासु को इसका मस्तक सावधानीपूर्वक तोड़ना पड़ेगा। उसे अपने अहंकार का शमन, जब कभी, किसी भी रूप में, वह पैदा हो, करना ही होगा। बसवण्णा हमें प्रत्येक स्थिति में कर्तव्यनिष्ठा के प्रति जागरुक मिलते हैं। अपने अहंकार का पालन-पोषण और अपने अभिमान का उत्तेजन करने में समस्त परिस्थितियां उनके अनुकूल थीं। किन्तु वे उन वस्तुओं की पहुंच से ऊपर उठ गए।

आमों के मध्य मैं एक उर्वरक फल हूं,
तेरे शरणों के समक्ष लाज छोड़कर
मैं अपने आप को भक्त कैसे गिन सकता हूं ?
कूडल संगम के भक्तों के समक्ष
मैं कैसे भक्त हो सकता हूं ?

वे निरभिमान होकर स्वीकार करते हैं कि उनका ईश्वरप्रेम शरणों की कृपा का फल है। अपने एक "वचन" में वह कहते हैं—

'मुझसे छोटा मनुष्य नहीं, कोई नहीं है,
शिव के भक्त से महानतर नहीं, कोई नहीं है।'

उन दिनों व्यक्ति का सामाजिक स्तर केवल जाति के आधार पर निर्धारित होता था। जाति और वर्ग के अभिमान को तोड़ना अत्यंत कठिन था। किन्तु बसवेश्वर ने अपनी ही जाति के अभिमान को अस्वीकार कर दिया था। वे कहते हैं—

हे भगवान,
उच्च जाति में जन्म लेने का समाघात
सहन न कराओ।

वे अपनी गणना चेन्नय्या, कक्कय्या और अन्य ऐसे जनों के साथ करते थे जिन्हें अछूतों के रूप में प्रथा के अनुसार नीच माना जाता था। बसवण्णा ने इस प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म अहंकार का, अंतर्निहित अहंकार का उन्मूलन कर दिया।

भक्ति इस दृढ़ संकल्प की मांग भी करती है कि किसी भी परिस्थिति में पथ पर बढ़ते रहना है।

चाहे अग्नि आए, चाहे संपत्ति आए, मैं नहीं कहता
मैं चाहता हूं या नहीं चाहता हूं।

इसी को नैष्ठिक भक्ति या अटूट उत्साह और एकाग्र आस्था के साथ महेश्वर

स्थल की भक्ति कहा जाता है। षट-स्थल कहलाने वाले छै पगों में यह स्थल दूसरा पग है जो वीरशैववाद की व्यवस्था के अनुसार नैसर्गिक स्थिति की ओर ले जाता है। वसवण्णा सहित समस्त शरणों ने इसका अनुसरण किया है। भक्त, महेश, प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण और ऐक्य आध्यात्मिक साधना के छै चरण हैं। इनमें हमें प्रारंभिक पीड़ा से लेकर सार्वभौम आत्मा की सिद्धि से उत्पन्न चरम परमानंद और शांति तक वह सभी मनोदशाएं मिलती हैं जिनमें किसी भक्त को रहना होता है।

षट-स्थल प्रणाली में भक्ति विकसित होती रहती है और अंतरिक्षीय आयाम धारण कर लेती है। भक्त-स्थल में हमें श्रद्धा-भक्ति अर्थात् संपूर्ण आस्था मिलती है। यह विकसित होकर सुस्थिर हो जाती है। महेश-स्थल में नैष्ठिक भक्ति, प्रसादी में अवधान सतर्कता भक्ति, प्राणलिंगी में अनुभव (सर्वोच्च का अनुभव) भक्ति, शरण में आनंद (परमानंद) भक्ति, और अंततोगत्वा ऐक्य में समस्त (परमात्मा और आत्मा का सम्मिलन) भक्ति। भक्त और भक्ति के विकास की यह धारणा षट-स्थल प्रणाली में बहुत सार्थकता के साथ प्रकट की गयी है। किन्तु वह इस प्रबन्ध की सीमा के बाहर है।

महेश्वर स्थल में बसवण्णा आस्था की अटलता प्राप्त करते हैं। उनकी भक्ति समस्त अशुद्धताओं से मुक्त होने के कारण अब दैवी अंतरिक्षीय इच्छा प्रकट करती है और समस्त संसार में व्याप्त है। वह पीड़ा और प्रसन्नता दोनों का शिव-कृपा के रूप में समान संतुलन के साथ स्वागत करते हैं। वह जानते हैं कि शिव अपने भक्तों की कई परीक्षाएं लेते हैं और उन्हें कसौटियों पर कसते हैं।

यदि मैं कहता हूं कि मुझे तुझ पर विश्वास है,
यदि मैं कहता हूं कि मैं तुझसे प्रेम करता हूं,
और अपने आपको तेरे हाथ बेच देता हूं,
तू परीक्षा के लिए मेरे शरीर को झकझोरता है।
मेरी परीक्षा लेने के लिए
मेरे मन और संपत्ति को तू झकझोरता है।
और जब इन सब परीक्षणों से
मैं संकुचित नहीं होता
हमारे भगवान कूडल संगम
संवेदित होकर स्वीकार कर लेते हैं।

कहा जाता है कि ईश्वर तक पहुंचने के लिए भक्ति-मार्ग सुगमतम है। किन्तु दूसरे प्रकार से यह अत्यन्त कठिन है। बसवण्णा कहते हैं: 'धर्म परायणता के नाम पर चलने वाला कार्य आप नहीं कर सकते, यह आरे की भांति आ-जाकर चीर देता है।'

क्योंकि यह एक अटल और अविचल आस्था है। वसव इसी आस्था के स्वामी थे और इसीलिए ईश्वर को अपना अविभाजित प्रेम समर्पित करते हुए पथ पर सफलतापूर्वक बढ़ते गए।

यह प्रेम मूलभूत रूप में अलौकिक है और 'मैं' तथा 'मेरा' की सीमाओं से अनभिज्ञ है। किन्तु इस प्रेम को व्यक्त करते हुए भक्त इसे भगवान के साथ अनेक सांसारिक संबंधों के रूप में परिकल्पित करते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार भक्ति का वर्गीकरण पांच प्रकार किया गया है: दास्य (सेवा भाव), साख्य (मैत्री भाव), वात्सल्य (ममता भाव), माधुर्य (पत्नी का प्रेम भाव) और शान्त (निर्विकार संबंध का भाव)।

इनमें कुछ प्रकारों को वसवण्णा नें उत्कृष्टतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। किन्तु दूसरे शरणों की भांति वे भी अपने व्यक्तिगत रूप की अपेक्षा ईश्वर की व्यक्तित्वहीन प्रकृति को उच्च प्रमुखता देते हैं। सांकेतिक रूप में कुरूहु या लिंग की पूजा करते हुए शरण लोग अरूह या दैवी चेतना को प्राप्त करने की आकांक्षा करते थे जो कुरूहु के परे है। अतएव उन्होंने इन प्रकारों को अधिक दूर तक नहीं फैलाया। किन्तु पुरन्दर दास और अन्य जनों द्वारा रचित इस साहित्य में उनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। फिर भी अक्का महादेवी, सिद्धराम, उरिलिंग देव जैसे शरणों और बसवण्णा ने भी इनमें कुछ प्रकारों का अनुभव किया है।

कूडल संगम के समक्ष वसवण्णा एक कर्त्तव्यनिष्ठ सेवक और एकनिष्ठ पत्नी के रूप में समर्पण करते हैं। निम्नांकित वचन में वे अपनेआप को एक आदर्श सेवक के रूप में अभिव्यक्त करते हैं—

यदि योद्धा (मैदान से) भाग जाता है
उसका स्वामी लज्जित होता है,
हे भगवान कूडल संगम आप मुझे
निष्कपट मन और शरीर से, धन बिना,
संघर्ष और विजय की शक्ति देते हैं।

'यदि कोई योद्धा युद्धक्षेत्र से लौट आता है तो उसके स्वामी की हानि हुई। इस प्रकार भी आप स्वामी हैं और मैं सेवक हूं। यदि मैं जीवन से संघर्ष में पराजित होकर भाग जाता हूं तो यह आपका अपमान है।' अतएव, वे प्रार्थना करते हैं, 'मुझे संघर्ष और विजय की शक्ति दो।'

सतीपति भाव—पति-प्रेम की भावना—कूडल संगम के प्रति चरम रहस्यवादी समर्पण को व्यक्त करने का एक और प्रकार है।

मैं हल्दी में नहायी उस स्त्री की भांति हूं,
जो सर्वांग स्वर्णाभूषण विभूषित है,

किन्तु अपने पति का प्रेम खो चुकी है,
मैं उस व्यक्ति की भांति हूं
जिसने अपने शरीर पर भस्म का लेप किया है,
और अपना कंठ गुरियों से घायल कर लिया है।
और जो, हे भगवान, आपका प्रेम खो चुका है।
हमारे गोत्र में कोई ऐसा नहीं है
जो पाप में पतित होकर भी जीवित है।
हे भगवान कूडल संगम,
जैसे आप चाहें मेरी रक्षा करें।

शरण—पत्नी—होने के नाते वह भगवान—लिंग—से प्रार्थना करते हैं। यह 'शरण सती, लिंग पति' प्रवृत्ति शरणों के गहन पथ में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

यहां वर्णित भक्ति के इन पांच प्रकारों के अतिरिक्त नौ अन्य पक्षों का भी वर्णन किया गया है। इनमें श्रवण, कीर्तन और स्मरण आदि मुख्य हैं। इन सबके माध्यम से दैवी शक्ति की गौरवगाथा सुनने के लिए और भगवान की प्रशस्ति गाने के लिए भक्त अपनी आध्यात्मिक योग्यताओं का विकास करता है। बसवण्णा के कुछ वचनों में इन्हें प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया गया है।

इसके अतिरिक्त बसवण्णा द्वारा अपनाए गए षटस्थल पथ के आठ सहायक हैं। इन्हें अष्टवर्ण कहा जाता है; गुरु, लिंग, जंगम, प्रसाद, पादोदक, विभूति, रुद्राक्षि, और मंत्र। ये भक्त को छै पगों पर पहुंचने में सहायता देते हैं। उन्होंने इन अष्टवर्णों को कुछ इस प्रकार अपनाया कि ये आंतरिक शुद्धता के महत्वपूर्ण प्रतीक और दैवीशक्ति की ओर उनके प्रयास में उनकी रक्षा करने वाले अभेद्य कवच बन गए। उन्होंने अपना तन, मन और धन क्रमशः गुरु, लिंग और जंगम को समर्पित कर दिया। इसे त्रिविधि दसोहा या त्रिपक्षी पूजा कहा जाता है।

अपने सैकड़ों वचनों में वह गुरु, लिंग और जंगम की अपनी अंतरिक्षीय धारणा अभिव्यंजक रूप में व्यक्त करते हैं। इन वचनों में इस धारणा को एक नवीन आयाम प्राप्त होता है जो किसी धर्म विशेष की समस्त सीमाओं को लांघ जाता है। उनकी भक्ति के इस महान पक्ष के विशेष अध्ययन की आवश्यकता है। इतना कहना पर्याप्त है कि उनका नैसर्गिक प्रेम गहन है और पूर्णतयः परिप्लावित करता हुआ प्रवाहित होता है। यही उन्हें प्रसादी और प्राणलिंगी चरणों से आगे बढ़ाते हुए शरण-स्थल तक पहुंचाता है।

यहां इस चरण में भक्त की प्रारंभिक पीड़ा पूर्णतयः मिट जाती है। अब वह आनंदपूर्वक गाता है—

मेरी जीभ तेरे नाम के अमृत में डूबी है,
मेरी आंखें तेरी छवि से भरी हुई हैं,
मेरा मन तेरे विचारों से भरा हुआ है,
मेरे कान तेरी ख्याति से भरे हैं,
मेरे भगवान कूडल संगम,
तेरे चरणकमलों में मैं एक मधुमक्खी हूं,
जो तुझ में ही लीन है।

संयोजक प्रेम के अपने भगवतदर्शन में वो पूर्णतया परिवर्तित होकर एक सार्वभौम मनुष्य बन जाते हैं। अब वे भगवान के हाथों में बजाये जाने के लिए एक बंसी बन गए हैं। फिर भी सन्तुष्ट नहीं हैं और एक पग आगे बढ़ते हैं—

मेरे पांव नाचने से नहीं थकते,
मेरी आंखें दर्शनों से नहीं थकतीं,
मेरी जीभ गायन से नहीं थकती,
और क्या ? और क्या ?
मेरा हृदय भरे हुए हाथों तेरी पूजा से नहीं थकता,
और क्या ? और क्या ?
हे भगवान कूडल संगम मुझ पर ध्यान दो,
जो मैं अत्यधिक प्रेमपूर्वक करना चाहूंगा,
वह है तेरा पेट फाड़ना और उसमें प्रविष्ट हो जाना।

अंतिम पंक्ति सारगर्भित है। वह उत्कंठापूर्वक दैवी शक्ति की गहनता में प्रविष्ट होने और कूडल संगम ही बन जाने की लालसा करते हैं। भक्त और भगवान की यह दृढ़ एकता तब होती है जब द्वैत नहीं रह जाता। भक्त और भगवान दोनों मिलकर एक हो जाते हैं।

यह अंतिम चरण ऐक्य-स्थल हैं। यहां भक्त भगवान के अपरोक्ष और अंतर्दर्शी बोध का अनुभव करता है। लिंग और अंग की अभिन्नतत्वीय एकता उत्पन्न हो जाती है जिसे लिंगाङ्ग समरस्य या आध्यात्मिक लक्ष्य की उच्चतम उपलब्धि कहा जाता है। वह सार्वभौम आत्मा में पूर्णतया विलीन और समस्त ब्रह्मांड के साथ सह-विस्तृत हो जाता है। भक्ति में तल्लीन वह भक्ति का ही वास्तविक अवतार बन जाता है। वह कहते हैं : 'अनुराग मेरे पीछे पड़ गया और मुझे निगल गया।'

निम्नांकित वचन उनकी उपलब्धि की उच्चता प्रकट करता है :

भक्ति की भूमि पर
गुरु रूपी बीज अंकुरित हुआ
और लिंग रूपी पत्र का जन्म हुआ
तब पुष्प का विचार और कोमल फल की कृति
तथा परिपक्व फल का ज्ञान उपजे,
जब यह ज्ञान का फल डंठल से टूटकर गिरा
देख, कूडल संगम ने इसे स्वयं चाहते हुए
उठाकर रख लिया।

अब बसवण्णा एक आदर्श फल के रूप में परिपक्व होकर अपने आपको कूडल संगम के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं जो फल को अपनेआप उठा लेते हैं और संभालते हुए अपने हृदय में रख लेते हैं।

इस प्रकार वीरशैव मत के अनुसार द्वैत से प्रारंभ करते हुए वह अद्वैत में अपनी संतुष्टि प्राप्त करते हैं। पुरन्दर दास, कनक दास, और अन्य अनुयाइयों द्वारा अपनायी गयी भक्ति की दास परंपरा तथा अद्वैत के अनुयायी शरणों की षट-स्थल प्रणाली के मध्य यही अंतर है। पुरंदर दास अंत में भी हरि से भिन्न परमानंद का उपभोग करते हैं। किन्तु बसवण्णा में यद्यपि प्रारंभिक द्वैत मिलता है, अंततोगत्वा भक्त और भक्ति नहीं रह जाते, न उपासक मिलता है न उपास्य। वह परमानंद ही या भगवान स्वतः बन जाते हैं। पूजा, पुजारी और पूज्य (भक्ति, भक्त और भगवान) एक में विलीन हो जाते हैं।

यह केवल द्वैत और अद्वैत के संश्लेषण का ही नहीं अपितु भक्ति, ज्ञान और कर्म के संश्लेषण का भी आदर्श उदाहरण है। बसवण्णा में एक रागात्मक प्रचुरता है जो दार्शनिक अंतर्दृष्टि और गहन अनुकम्पा के साथ संयुक्त है और मानव जाति के कल्याण के लिए विगलित होती है। उनकी भक्ति असीम गूढ़ अनुभूति से सजीव है। यह निर्धारित लक्ष्य की ओर गरिमा और संयम के साथ आगे बढ़ती है क्योंकि वह उफनाती हुई बुद्धि के प्रकाश में परिपक्व और शुद्धीकृत भावनाओं से युक्त है। नदी की भांति, जो स्वयं समुद्र बनने के लिए समुद्र में विलीन हो जाती है, उनकी भक्ति भगवान कूडल संगम में विलीन होकर स्वयं भगवान बन जाती है। वे इसे परम नीरवता की स्थिति कहते हैं। उपनिषदों के कथनानुसार सार्वभौम परमात्मा के साथ चरम संपर्क की उस स्थिति तक वाक्शक्ति नहीं पहुंच सकती और मस्तिष्क उसे नहीं समझ सकता। फिर भी बसवण्णा उस स्थिति की भव्यता को शब्दों में समेटने का एक साहसपूर्ण प्रयत्न करते हैं—

उस सत्ता को देखो जो शेष रहती है
जब समग्र गहन अंधकार तिरोहित हो जाता है;

जब प्रकाश पर प्रकाश का राज्याभिषेक कर दिया गया है,
तब जो एकता घटित होती है
वह केवल भगवान कूडल संगम को ज्ञात है।

प्रकाश प्रकाश में मिल जाता है और जो अन्त में शेष रहता है वह मात्र प्रकाश है।

एक क्रांतिकारी संत

बसवण्णा के आध्यात्मिक साधना के समय कहे गए वचन अंतर्दर्शी अनुभव का जीवित कीर्तिमान और अत्यन्त उच्च कोटि की आध्यात्मिक सिद्धि में सहायक आचार संहिता है। यह कोई बौद्धिकतापूर्वक रचित विचार परिपाटी नहीं है, न यह शास्त्रियों के दर्शन की भांति शुष्क है। इसका लक्ष्य स्पष्ट है। एक प्रशंसनीय विशेषता उस नैसर्गिक प्रेम का सिद्धान्त है जिसमें विचार और कार्य दोनों सम्मिलित हैं।

उनकी भक्ति सांसारिक गतिविधियों में भाग लेने या प्रकृति और समस्त गतिविधि का त्याग करने या निवृत्ति के मध्य एक संतुलन उत्पन्न करती है। मनुष्य के बाहरी जीवन और आंतरिक जीवन के मध्य यह एक संपूर्ण संतुलन है। यह एक दुलर्भ संगम है और मानवीय व्यक्तित्व के सभी तीनों पक्षों—विचार, अनुभूति और कार्य—का एक सुखान्त संश्लेषण है।

वे कर्मठ व्यक्ति थे। उनके कार्यों का मूल एक निर्दोष दर्शन और जीवन के प्रति एक महान मनोवृत्ति में गहरा पैठा हुआ था। इस मनोवृत्ति के प्रेरक थे मानवता के प्रति अतुलनीय अनुकम्पा और सार्वभौम सत्ता के प्रति निस्वार्थ प्रेम। वे इन समस्त आयामों में रहे और प्रत्येक आयाम में उनकी उपलब्धियां अद्‌भुत हैं।

बसवेश्वर ने आत्मविभोरता की वह उच्चतम स्थिति प्राप्त किया जिसे कोई आध्यात्मिक आकांक्षी ही प्राप्त कर सकता है। विशेषता यह है कि उन्हें यह प्राप्ति संसार का त्याग किए विना हुई थी। वे तपश्चर्या का अनुसरण भी नहीं करते थे। वे संसार को स्वीकार करते थे और उसका सम्मान भी करते थे। उन्होंने जीवन की सामान्य गतिविधियों से मुंह कभी नहीं मोड़ा। पराकाष्ठा की खोज में बुद्ध ने संसार का परित्याग कर दिया था। किन्तु बसवण्णा ने संसार को स्वीकार किया और पराकाष्ठा भी प्राप्त किया। देश के राजनीतिक जीवन में वे एक ऊंची स्थिति पर विराजमान थे। उनका पारिवारिक जीवन सुखी था। उनके लिए परित्याग का अर्थ जीवन को अस्वीकार करना नहीं था। वे स्त्री, स्वर्ण और भूमि की माया के प्रलोभन नहीं मानते थे। अपने एक वचन में वह कहते हैं—

अपनी इंद्रियों पर लगाम लगाते हुए आप
जो कुछ करते हैं वह है व्याधियों को चकित कर देना
क्योंकि पांच इंद्रियां आती हैं और सामने खड़े होकर
आपका उपहास करती हैं।
क्या सिरियाला और चंगाले ने
नवविवाहित स्त्री-पुरुष की
अपनी प्रेम-रात्रियों को छोड़ दिया था ?
क्या सिन्धु बल्लला ने अपने कामानंद
और अपने आमोद-प्रमोद को त्याग दिया था ?
मैं तेरे सामने शपथ लेता हूं,
यदि कभी मैं किसी और की स्त्री
या संपत्ति का लोलुप हो जाऊं,
तो हे भगवान कूडल संगम,
मुझे तेरे चरणों से दूर हटा दिया जाये।

समुचित ढंग से इंद्रियों की रुचियों का आनंद लेना चहिए। इसमें कोई बुराई नहीं है। किन्तु इसी के साथ-साथ यह भी अवश्य समझना है कि आनंद की सीमाएं होती हैं और इंद्रियों पर नियंत्रण रखना है। इंद्रियों का निग्रह स्वचालित और यत्नहीन होना चाहिए। इंद्रियों के बनावटी दमन और आत्मसंतापन का कोई उपयोग नहीं है। आत्मा की यात्रा में सुविधा पहुंचाने के लिए इंद्रियों को हमारी सेविका होना चाहिए। उन्हें आत्मा की प्रगति को अवरुद्ध रखने वाली बाधक अत्याचारी बनने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

हमें सांसारिक आनंदों की अपर्याप्तताओं को समझना चाहिए। किन्तु किसी को उत्साहहीन अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है। इस मानव जीवन में यह संभव है और इसी जीवन में सर्वथा भीतरी सत्य के स्थिर मर्म की खोज करना चाहिए। इसलिए यह नश्वर जीवन पवित्र और सार्थक है। बसवण्णा कहते हैं— 'यह नश्वर संसार निर्माता की टकसाल ही है। हम सब इस टकसाल से निकले हुए सिक्के हैं। यदि कोई सिक्का यहां नकली सिद्ध होता है तो वहां भी नकली ही रहेगा।' वह पूछते हैं: 'जो जन यहां भली-भांति नहीं जी सकते वह इसके पश्चात् क्या प्राप्त कर सकते हैं ? निराशा और विरक्ति के साथ एक चलते-फिरते शव की भांति जीना जीवन का आध्यात्मिक रूप नहीं है। इसे वास्तविक तपस्या या संन्यास भी नहीं माना जा सकता। हमें यहीं रहना है और भली-भांति रहना है, और साथ ही साथ आत्मा का वह रूप प्राप्त करना है जो नश्वर जीवन की सीमाओं के परे है।'

जीवन जब अमर जीवन की खोज में बाधक नहीं रह जाता तो वह अधिक सार्थक हो जाता है। संसार या सांसारिकता के पागल घोड़े पर सवार होने के लिए हमें योद्धा की भांति कृतसंकल्प होना चाहिए। घोड़े की दया पर निर्भर होने के स्थान पर हमें उसका स्वामी होना चाहिए। बसवण्णा ने उन नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों का निरूपण किया है जिनके द्वारा हमें संसार के घोड़े का स्वामित्व मिल सकता है।

वे गाल बजाने और बाल की खाल निकालते हुए अनुमान लगाने पर विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने ऐसी कोई बात नहीं कही जिस पर वे आचरण न कर सकते हों। उनके जीवन में उपदेश के पूर्व आचरण का स्थान था। उन्हें हिन्दू धर्म में उपनिषदों का वह दर्शन उपहासास्पद दिखायी पड़ा जो समस्त मानवता की सारभूत एकता को प्रमाणित करता है, पर उसमें व्यावहारिक रूप में चतुर्वर्ण विभाजन के अतिरिक्त सैकड़ों जातियां और पंथ हैं जो परस्पर श्रेष्ठता का दावा करते हैं। इसके अतिरिक्त अछूत प्रथा ऐसी थी जिसे बसवण्णा समाज का कलंक और मनुष्य का अपमान मानते थे।

उन्होंने समूची प्रणाली की तीव्रतापूर्वक निन्दा की और चतुर्वर्ण या चतुष्पक्षीय विभाजन की ओट में प्रचलित स्वार्थी प्रथाओं और शोषणों के विरुद्ध क्षोभ प्रकट किया। उन्होंने धर्म की सच्ची प्रकृति को विवेकपूर्वक प्रकाशित किया। निम्नांकित वचन उनकी विवेकशीलता का एक चित्रण है—

मनुष्य जो बध करता है, चाण्डाल है,
मनुष्य जो सड़ा-गला मांस खाता है, नीच जाति का व्यक्ति है,
कहां है जाति यहां, कहां ?
हमारे कूडल संगम का शरण
जो समस्त जीवित वस्तुओं से प्रेम करता है,
कुलीन है।

इस प्रकार वे घोषणा करते हैं कि मनुष्य का मूल्य उसके जन्म द्वारा नहीं अपितु उसके विचार और कृतियों द्वारा, उसके आचरण और चरित्र द्वारा निर्धारित होना चाहिए। सैंकड़ों जातियों और उपजातियों तथा उनके मध्य अपमानजनक विवादों को देखकर वे विरक्त थे। मनुष्यों में वे केवल दो वर्गों को मानते थे : भक्त और भाविस अर्थात् अच्छा और बुरा। उन्होंने अपने अभिमत को अन्य ऋषि-मुनियों के कोड़ियों उदाहरणों द्वारा चित्रित किया और दिखलाया कि जन्मगत जाति मनुष्य के मूल्य का निर्णायक कभी नहीं बन सकती।

व्यास एक मछली पकड़ने वाले का पुत्र है,
मारकण्डेय जन्मना जाति-च्युत था,

मन्दोदरी मेंढक की कन्या थी,
जाति में जाति की चिन्ता मत करो,
आप पहले क्या थे ?
अगस्त्य वास्तव में चिड़ीमार था,
दुर्वासा जूता बनाया करता था,
कश्यप एक लोहार था,
कौंडिन्य नाम का ऋषि,
तीन लोक जानते हैं कि नाई था।
तुम सब अंकित कर लो
हमारे कूडल संगम के शब्द हैं :
क्या हुआ यदि कोई नीच कुल में जन्मा है
केवल शिवभक्त का जन्म अच्छा है।

उन्होंने इस प्रकार जाति अभिभूत समाज की निन्दा की और हिन्दू समाज के चतुष्पक्षीय विभाजन के विरुद्ध दृढ़तापूर्वक विरोध का स्वर उठाया।

सहभोजन में भाग लेने में, विवाह के विषय में और दैनिक जीवन के अन्य मामलों में या सामाजिक संबंधों में वह जातिभेद को स्वीकार नहीं करते थे। उनके विचार में ऐसे भेदभाव का आधार अवांछनीय कृत्रिम विभाजन था जो मनुष्य-मनुष्य के मध्य अंतर में वृद्धि उत्पन्न करता था—

वे कहते हैं कि भोजन करने
और कपड़े पहनने में,
उनकी प्रतिज्ञाएं प्रभावित नहीं होती;
जब कभी वे जोड़े का प्रबंध करते हैं
जाति की ओर देखते हैं;
आप उन्हें भक्त कैसे कह सकते हैं ?
मेरी सुनो, हे कूडल संगम भगवान !
यह मासिक धर्म के समय की उस महिला की भांति है
जो शुद्ध जल में स्नान कर रही है।

वे वास्तव में क्रान्तिकारी थे। विशेषतः आठ सौ वर्ष पूर्व जाति-ग्रस्त समाज पर इसके प्रभाव की कल्पना भली-भांति की जा सकती है। यदि बसव ने केवल इस की घोषणा की होती तो हो सकता है कि प्रतिक्रियावादी शक्तियां उनकी उपेक्षा कर देतीं। किन्तु वे जो कुछ कहते थे उस पर आचरण भी करते थे। उन्हीं अछूतों को, जिन्हें कुलीन जनों ने दूर कर रखा था और जिन पर दृष्टि पड़ जाने के पश्चात् स्नान करके शुद्ध होना पड़ता था, बसवण्णा द्वारा स्थापित सामाजिक-

धार्मिक संस्थान अनुभव-मंडप में सदस्यों के रूप में सूचीबद्ध किया गया था। बसवण्णा ने उनको धर्म और समाज दोनों में समान स्तर दिया। वे कहते हैं—

यदि मैं सिरियाला को व्यापारी
और मांचय्या को धोबी कहूं ?
कक्कय्या को चर्मकार और
चेन्नय्या को मोची कहूं ?
और यदि अपनेआप को ब्राह्मण कहूं
तो कूडल संगम मेरा उपहास नहीं करेंगे क्या ?

यह वचन उन सब के लिए संपूर्ण धार्मिक समानता की घोषणा करता है जो अपने जन्म के कारण नहीं अपितु अपने मूल्य के कारण उसके अधिकारी हैं।

इस सामाजिक सुधार के फलस्वरूप बसव को प्रतिक्रियावादी शक्तियों के घोर विरोध का सामना करना पड़ा। इसके बावजूद वे महत्वपूर्ण प्रतिफल उत्पन्न करने में समर्थ थे। क्योंकि वे किसी स्थानिक सामाजिक सुधार का उपदेश नहीं देते थे। उनका सामाजिक सुधार प्रेम और केवल प्रेम पर आधारित था। मानवता के प्रति उनका प्रेम, विशेषतः निम्न और हारे हुए तथा पददलित जनों के लिए असीम था। वे अपनेआप को जनसाधारण में एक मानते थे और यह कहने की सीमा तक भी जाते थे :

जब कक्कय्या चर्मकार मेरा पिता है
और चेन्नय्या पितामह है
क्या मैं सुरक्षित नहीं हूं ?

यही वह अनन्त प्रेम और अनुकम्पा हैं जिन्होंने उन्हें मानवता का मुक्तिदाता बना दिया था।

प्रेम और अनुकम्पा उनके दर्शन और धर्म के आदर्श शब्द हैं। उनका एक प्रसिद्ध वचन कहता है :

अनुकम्पा के अभाव में
यह किस प्रकार का धर्म हो सकता है ?
समस्त जीवित वस्तुओं के प्रति
अनुकम्पा अनिवार्य है।
धार्मिक आस्था का मूल अनुकम्पा है;
भगवान कूडल संगम उसकी चिन्ता नहीं करते
जो इस प्रकार का नहीं है।

उनके समस्त सामाजिक और धार्मिक सुधार मानवता के प्रति इस अनुकम्पा और सर्वव्यापक प्रेम पर आधारित हैं।

वास्तव में वसव सामान्यतः सुधारण कहलाने वाली वस्तु पर विश्वास नहीं करते थे। उनका विश्वास विकास पर था। उन्होंने मानव एकता के वेदान्ती आदर्श और उसकी अंतर्जायी दैवी प्रकृति की ओर एक समूची पीढ़ी का अधिक से अधिक विकास किया। उन्होंने जीवन का समग्र रूप में अनवरत अवलोकन किया। उनकी दृष्टि संघटित थी। और इसीलिए वह धर्म के नाम पर समाज का कोई कृत्रिम विभाजन सहन नहीं कर सके। व्यक्तियों की प्रगति में बाधक कृत्रिम अवरोधों पर अप्रसन्न होते हुए उन्होंने उग्रतापूर्वक ऐसी विसंगति और विषमता का विरोध किया। उन्होंने सम्पूर्ण समानता स्थापित करने का प्रयत्न किया। वह सबको नीचे लाकर समान करना नहीं चाहते थे अपितु सभी को जाति, धर्म या योनि के भेदभाव बिना समान अवसर देते हुए ऊपर उठाकर समान करना चाहते थे।

बसवण्णा का महान उद्देश्य एक ऐसे आदर्श समाज का निर्माण था जिसमें धार्मिक अनुसरण या आध्यात्मिक विकास के लिए सभी व्यक्तियों को, जीवन में उनके व्यवसाय पर विचार किए बिना, समान अवसर अनिवार्यतः उपलब्ध हो। मनुष्य के मूल्य का अनुमान उसके व्यवसाय के अनुसार करने की प्रचलित सामाजिक मनोवृत्ति को उन्हें परिवर्तित करना पड़ा। उन्होंने घोषित कर दिया कि व्यवसाय में ऊंच या नीच जैसी कोई वस्तु नहीं होती। यह सत्यवादिता और निष्कपटता है जो जीविका या "कायक" के साधनों का गुण-अवगुण निश्चित करती है।

अतएव नीच कुल में जन्म लेकर हरलय्या, जो व्यवसाय से जूतों की मरम्मत करता था, उनके—बसव के—समान माना गया जो राज्य के मंत्री थे। इसका कारण उसकी आध्यात्मिक प्रगति थी जो वसवण्णा की प्रगति के समान थी। बसव ऐसी सामाजिक समानता पर दृढ़तापूर्वक विश्वास करते थे, और इसलिए वे अपने नवीन धर्म में सब को समान अवसर प्रदान करते थे।

किन्तु यह स्मरण आवश्यक है कि सभी जूते गांठने वाले हरलय्या नहीं थे। केवल वह जन जो अवसरों का उपयोग कर सके और परिस्थितियों से ऊपर उठ सके तथा जिन की प्रवृत्ति आध्यात्मिक थी, भक्तों की पंक्ति में प्रविष्ट किए गए थे। वे विचार, शब्द और कृति में शुद्ध होकर स्वच्छ जीवनयापन करते थे।

बसव की सराहनीय उपलब्धि यह थी कि उन्होंने जाति, धर्म या योनि के किसी भेदभाव बिना समान सामाजिक और धार्मिक अवसर सभी के लिए सुलभ कर दिये।

यह एक भ्रामक धारणा है कि बसवण्णा सभी प्रकार के लोगों को वीरशैववाद का अनुयायी बना लेते थे। वे जानते थे कि केवल वही व्यक्ति भक्त बन सकते हैं जो व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता पर आधारित आध्यात्मिक उद्देश्य का दृढ़तापूर्वक अनुसरण कर सकते हैं। धर्म के नैतिक पक्ष के विषय में

वे बहुत दुस्तोष्णीय थे। उन्होंने किसी को अपने साथ केवल इसलिए नहीं सम्मिलित किया कि वह धर्मपरिवर्तन का इच्छुक था।

छल और चोरी, लोभ और हिंसा, धूर्तता और दुराचरण की वे निर्दयतापूर्वक निन्दा करते हैं तथा समाज में निर्दोष चरित्र, सत्य-आचरण, विनम्रता और प्रसन्नतादायक शिष्टाचार और स्वच्छ स्वभाव को उच्चतम प्राथमिकता देते हैं। उनके कुछ वचनों ने सार्वभौम नैतिक संहिता निर्धारित की है जो पढ़ने में दस धर्मादेशों या पर्वत पर किये गये प्रवचन के समान प्रतीत होते हैं। केवल एक उद्धृत है :

तू चोरी या हत्या नहीं करेगा,
न असत्य बोलेगा,
तू किसी पर क्रोधित नहीं होगा,
न किसी अन्य मनुष्य से घृणा करेगा,
अपनेआप पर गौरव भी नहीं करेगा,
तू दूसरों पर दोषारोपण नहीं करेगा,
यह तेरी अंतर्मुखी शुद्धता है
यही हमारे भगवान कूडल संगम को
जीत लेने का उपाय भी है।

वे भीतर और बाहर की शुद्धता को महत्व देते हैं। केवल तभी, जब जिज्ञासु के तन-मन, हृदय और आत्मा, उसकी इच्छा और चेतना शुद्ध हों, भगवान के प्रति उसकी भक्ति पूर्णता प्राप्त कर सकती है।

इस प्रकार, जो लोग सद्गुण के पथ का अनुसरण कर सकते थे और भक्त माने जाते थे उन्हीं को नवीन आस्था में प्रवर्तन या दीक्षा के उपरान्त वे सम्मिलित करते थे। बसवेश्वर ने घोषणा कर दी : एक बार वीरशैव संघ में उनके प्रविष्ट हो जाने पर, उनके पुराने वर्ण और जातियां स्वतः जल जाते हैं और एक नवीन जीवन प्रारंभ होता है। नवीन धर्म में दीक्षित अछूत जैसे हरलय्या, नागमय्या, धुलय्या और बाचरस, शान्तरस और मधुवरस जो ब्राह्मण जाति से परिवर्तित हुए थे सबको वे समान मानते थे। एक ही प्रयास में उन्होंने जन समुदायों का आध्यात्मिक पुनरुत्थान और उनकी सामाजिक तथा धार्मिक समानता प्राप्त कर लिया था। हम विश्वास कर सकते हैं कि इसके पूर्व धर्म ने इतना गंभीर दृष्टिकोण और इतना विशाल आकर्षण कभी धारण नहीं किया था। यह देखकर आश्चर्य होता है कि अछूत मदारा धुलय्या, चरवाहा तुरुगही रामन्ना, योद्धा जोधर मायन्ना और अनेकानेक अन्यजन आध्यात्मिक परिमंडल में महानतम उच्चताओं पर पहुंच सके और वचनों के रूप में अपने गूढ़ अनुभव को व्यक्त कर पाये।

समान महत्व की एक और उपलब्धि यह थी कि महिलाओं का पुनरुद्धार हुआ। मैत्रेयी और गार्गी का युग बहुत-बहुत पहले समाप्त हो चुका था। महिलाएं और शूद्र वेदों या अन्य धर्मशास्त्रों का अध्ययन नहीं कर सकते थे। इन परिस्थितियों में बसव ने साहसपूर्वक घोषणा की कि धर्म में महिलाओं और पुरुषों के मध्य कोई भेदभाव नहीं है। उन्होंने उस प्रत्येक पुरुष या महिला के लिए, जो निष्कलुष हृदय और गंभीर इच्छा के साथ प्रविष्ट होगा या होगी, आध्यात्मिक अनुसरण के द्वार खोल दिए थे। इसीलिए कई महिला संतों को हम देख सकते हैं जिनमें अक्का महादेवी, नीलम्बिके, गंगाम्बिके, लक्कम्मा, लिंगम्मा और महादेवम्मा आदि मुख्य हैं और जिनके नाम उन्नत आध्यात्मिक उपलब्धि से संबंधित हैं।

इस घोषणा के साथ-साथ कि धर्म में सबको समान अवसर प्राप्त है, बसवेश्वर को शास्त्रीय और राजकीय पंजों से धर्म की मुक्ति के लिए संघर्ष करना पड़ा। वह पूछते हैं : 'यदि आप वेद पढ़ते हैं या शास्त्रों का श्रवण करते हैं तो क्या हुआ? यदि आप अपनी गुरियों को गिनते हैं या प्रायश्चित्त करते हैं तो क्या हुआ?' और अभिपुष्टि करते हैं : 'जब तक करनी-कथनी का पालन नहीं करती भगवान कूडल संगम का प्रेम प्राप्त नहीं होता।' कथनी और करनी की यह एकरूपता जिज्ञासु की सारभूत योग्यता है। बसवण्णा पुनः कहते हैं :

मैं वेद और शास्त्र के
प्रचारकों को महान नहीं कहता,
न उन्हें ही कहता हूं जो मरीचिका की
भूलों में छिपे पड़े हैं।

केवल वे ही महान हैं जिन्होंने माया या मरीचिका को तिरोहित कर दिया है। यह महानता उन सबको प्राप्त हो सकती है जो तन, मन और कृति में शुद्ध हैं।

उन्होंने वेदों में निहित धर्मविधियों का प्रचंडतापूर्वक विरोध किया किन्तु उपनिषदों में प्रकट किए गए सत्य को स्वीकार किया। अनुकम्पावान बसव पूछते हैं : 'अनुकम्पा के बिना यह किस प्रकार का धर्म हो सकता है?' पशु-बध-उन्मुख में बलिदान संस्कारों के विषय में वे कोई समझौता नहीं कर सके। अपने एक वचन वह धर्मपरायणता और अनुकम्पा का स्वर गुंजित करते हैं। यहां वह उस बकरे को संबोधित करते हैं जो बलिप्रदान की अग्नि की ओर ले जाया जा रहा है :

हे बकरे, चीखो, चिल्लाओ,
कि वेदों के अनुसार
तुम्हारी हत्या की जाती है,
वेद पढ़ने वालों के समक्ष,
चीखो और चिल्लाओ,

शास्त्रों का श्रवण करने वालों के समक्ष
चीखो और चिल्लाओ,
भगवान कूडल संगम उसका उचित शुल्क लेंगे
जिसके लिए तुमने विलाप किया है।

बुद्ध भी इसी प्रकार करुणा से प्रभावित हुए थे और उन्होंने भी ऐसे बलिदान तथा अन्य संस्कारों का विरोध किया था। बसवण्णा ने इन अनुष्ठानों और इनके लिए उत्तरदायी पंडागीरी के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। वे एक मूलभूत भगवान के प्रति एकाग्र आस्था और सर्वोच्च प्रेम का समर्थन करते थे। वे अनेक भगवानों की पूजा करना या अनेक ईश्वरवाद स्वीकार नहीं करते थे।
उनका कठोर एकईश्वरवाद अनेक वचनों में अभिव्यक्त किया गया है। वह कहते हैं :

ईश्वर है केवल एक, नाम हैं उसके अनेक
पतिव्रता पत्नी केवल एक भगवान को जानती है।

तुच्छ स्वार्थों के लिए मारी और मसानी जैसे सैकड़ों देवी-देवताओं के पूजन की वह आलोचना करते हैं। वह व्यंगपूर्वक कहते हैं कि 'कूडल संगम भगवान मेरी शरण बनो' का एक ही आघात सैंकड़ों मिट्टी के बर्तनों जैसे वीरैया, केतैया, और उन अन्य देवताओं को चूर-चूर करने के लिए पर्याप्त है जो दूध देती गाय, रोते हुए शिशु और सगर्भ महिला आदि को पकड़ लेते हैं या पीड़ित करते हैं। यहां बसवण्णा भय और अंधविश्वास के धर्म को प्रेम और निस्वार्थ निष्ठा के धर्म से स्पष्ट रूप में भिन्न कर देते हैं।

वह इष्टलिंग के रूप में एक भगवान की पूजा का समर्थन करते थे। वीरशैव पंथ की विचारधारा यही है। इस आस्था के अनुरूप उनकी भगवान संबंधी धारणा इतनी उदात्त और विश्वास उपजाने वाली है कि महान चिन्तकों को भी आकृष्ट कर लेती है :

मैं जिस ओर देखता हूं,
हे भगवान, तू दिखाई देता है;
समस्त परिव्यापक अंतरिक्ष का रूप,
तू है सर्व व्यापक नयन,
हे भगवान, तू ही सार्वभौम आकृति है,
हे भगवान, सब की भुजाएं भी तू है,
तू ही चरण भी है कूडल संगम भगवान।

वे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की त्रिमूर्ति से परे पहुंचते हैं। इष्टलिंग का रूप

सर्वोच्च सर्वशक्तिमान ने ही धारण किया है और गुरु की कृपा से इसकी पूजा होने लगी है।

वीरशैव आस्था में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने शरीर पर धारण किया जाने वाला इष्टलिंग केन्द्रीय विषयवस्तु बनता है। यहां इस पर विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं है। यह भगवान की एक निराकार परिकल्पना है। शून्य या पराकाष्ठा की एक मूर्ति बनाकर गुरु अपने शिष्य को इष्टलिंग के रूप में दे देता है। शिष्य के कानों में वह षटाक्षर मंत्र या षटाक्षरी फूंक देता है। यह इष्टलिंग जिसकी पूजा नित्य हथेली पर की जाती है, जिज्ञासु की समूची आत्मा को आक्रान्त कर देता है और उसे विकसित होकर प्राणलिंग तथा भावलिंग की स्थिति पर पहुंचने में सहायता देता है। यही तथ्य पिछले अध्ययन में बसवेश्वर की भक्ति के विकास में भी हमने देखा है। बसवण्णा अनुरोधपूर्वक कहते थे कि जिज्ञासु को एकाग्रचित्त आस्था के साथ अपनी सभी शक्तियां केवल इष्टलिंग की आराधना और पूजा पर केन्द्रित कर देना चाहिए।

इस प्रकार उस मंदिर-पूजा और पंडागीरी को हटा देने में बसव सफल हुए जो शोषण के साधन और सदन बन गए थे। भक्त और भगवान के मध्य पूजा एक व्यक्तिगत घनिष्ठता है। यह घनिष्ठता इष्टलिंग में प्रत्यक्षतः प्राप्त होती है क्योंकि लिंग और भक्त के मध्य कोई मध्यस्थ नहीं है। अन्य लोगों से मंदिर में पूजा कराने का प्रबंध करने में कोई सद्‌गुण नहीं है। बसवेश्वर कहते हैं :

> प्रेम में लीन होना या अपना भोजन करना
> क्या किसी दूत द्वारा कराया जा सकता है ?
> लिंग के समस्त संस्कार और समारोह,
> प्रत्येक को अपनेआप करना चाहिए।
> यह किसी दूत द्वारा कभी नहीं किया जाता।
> हे कूडल संगम !
> भगवान तुझे वे कैसे जान सकते हैं
> जो मात्र उपचार के लिए यह कहते हैं।

इस प्रकार दलालों द्वारा भगवान के पूजन की कठोर निन्दा की गयी है। इस धार्मिक तर्कवाद ने जनता को जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण दिया। उस कर्म सिद्धान्त पर उन्होंने नवीन प्रकाश डाला जो मनुष्यों को इस भाग्यवादी अकर्मण्यता की ओर ले जाता है कि प्रत्येक वस्तु पूर्वजन्म के कर्म का फल है, कि मनुष्य विश्वासघाती भाग्य की दया पर आश्रित एक असहाय कठपुतली है। इस पराजयवादी दृष्टिकोण के विरुद्ध बसवण्णा ने प्रचण्डतापूर्वक विद्रोह किया। उन्होंने एक नवीन शक्ति और तेज का संचार कर दिया कि पूर्वजन्म का कर्म मिट

जाए और हम अपने वर्तमान तथा भविष्य के कार्यों से आत्मविश्वास के साथ अपने भविष्य का गठन करें।

बसव बुद्धिवादी थे और केवल उसी आस्था का अनुमोदन करते थे जो आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक थी। वे पारम्परिक रुढ़ियों और अन्ध-विश्वासों का समर्थन कभी नहीं करते थे। विशाल जनसमुदायों के मस्तिष्कों पर जमे हुए अनेकों अंधविश्वास थे जैसे—फलित ज्योतिष, अच्छे या बुरे शकुन और दिनों, सप्ताहों या नक्षत्रों का प्रभाव। जनता प्रत्येक पग पर, प्रत्येक साधारण कारण के लिए किसी अलौकिक शक्ति की ओर असहाय रूप में ताकने की अभ्यस्त हो गयी थी। जनता बहुत सीधीसादी थी और भड़कीले वस्त्र पहनकर घूमने वाले पंडों और सन्यासियों के छल-कपट को पहचान नहीं पाती थी। बसव ने इस धार्मिक शोषण की दृढ़तापूर्वक भर्त्सना की और इसे समाप्त कर देने का प्रयास किया। वह दृढ़तापूर्वक ही यह घोषणा करते हैं—

जब कभी हमारा अंतर जिसे कहे,
उसे शुभ समय समझो,
सोचो कि अनुकूल लक्षण उपस्थित है,
और यह कि मिलन पूर्वनिर्धारित है,
यह कि चंद्र और नक्षत्र कृपावान हैं,
और यह कि कल से आज अच्छा है,
यह उपलब्धि,
जो भगवान कूडल संगम के उपासकों को होती है,
तेरी है।

एक और वचन में उन्होंने कहा है : उसके सब दिन एक समान हैं जो शिव को अपना शरणदाता मानता है और उनका आवाहन सफलतापूर्वक करता है। किसी जिज्ञासु को दिनों का भक्त सर्वथा नहीं होना चाहिए। उसे भगवान का भक्त होना चाहिए और एक सर्वोच्च सर्वशक्तिमान दैवी सत्ता में आस्था रखना चाहिए।

बसवण्णा ने अपने वचन का सत्य अपने जीवनपथ में चरितार्थ किया—

मैं नहीं जानता
दिन या सप्ताह क्या हैं,
राशिचक्र का एक चिह्न,
शुभ है या नहीं है,
मेरे लिए रात या दिन
एक विभाजन है,
भक्त की जाति एक है
अभक्त की दूसरी।

उनके लिए सभी शकुन शुभ हैं, सभी दिवस पवित्र हैं। 'यह महान पर्वत मेरु की ओट में शरण लेकर अपनी छाया खोजने जैसी बात है।' जिन लोगों ने महान मेरु अर्थात् शिव की शरण ग्रहण की है उनके लिए शुभ और अशुभ के मध्य अंतर नहीं है।

अतएव उन्होंने उस प्रत्येक वस्तु के विरुद्ध विद्रोह किया जो कारणसंगत नहीं थी। उन्होंने विगत के बोझ-रूप में प्रचलित शारीरिक क्लांति और मानसिक उदासीनता की दशाओं को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया। वह धर्मशास्त्रों या उस विषय में किसी शास्त्र को ऐसा पवित्र आदर्श नहीं मानते थे जिसे बिना चुनौती या आपत्ति के स्वीकार करना अनिवार्य था। विशेषाधिकार प्राप्त वर्णों की बुराइयों को वह सहन नहीं कर सके। जाति और वर्ण के समस्त भेदभावों के विरुद्ध उन्होंने प्रबल आंदोलन उठाया। यह आंदोलन उनके युग के समाज की परिस्थितियों में बहुत क्रांतिकारी प्रतीत हुआ।

उन्होंने विचार की शुद्धता और कार्य की शुद्धता को सर्वाधिक महत्व दिया। उनके लिए साधन और साध्य समान महत्व रखते थे। विचार और कार्य की शुद्धता से सम्पन्न इस आध्यात्मिक अनुशासन को वह 'कायक' कहते थे। उनके समकालीन शरणों की उपलब्धि के प्रसंग में कायक ने विशेष सार्थकता प्राप्त कर लिया था।

कायक का संदेश

कायक शब्द का अर्थ है सत्यनिष्ठ शारीरिक परिश्रम किन्तु यह अपनी जीविका के लिए परिश्रम की अपेक्षा और बहुत कुछ है। कहा जा सकता है कि कायक के महत्व की धारणा व्यावहारिक दर्शन में बसवण्णा का एक विशिष्ट योग-दान है। बसवण्णा और अन्य शरणों द्वारा इसका इस प्रकार व्यवहार और प्रचार किया गया कि इसने एक नवीन आयाम प्राप्त कर लिया। उन्होंने इसमें विचार और कार्य का एक सम्पूर्ण समन्वय फूंक दिया। वे स्वयं विचारक और कार्यकर्त्ता दोनों प्रकार के मनुष्य थे। यह धारणा इतनी विस्तृत है कि सार्वभौमिक उपयोग में सक्षम है।

प्रथम स्थान में यह निर्वाह के लिए एक व्यवसाय या जीविका है। गांधी जी के कथनानुसार यह "रोटीश्रम" है। 'प्रकृति ने हमें अपनी भृकुटि के स्वेद द्वारा अपनी रोटी अर्जित करने को नियत किया है', गांधी जी कहते हैं। दैहिक या शारीरिक श्रम धनी या निर्धन प्रत्येक के लिए किसी न किसी रूप में अनिवार्य है। तब इसे उत्पादक श्रम का स्वरूप क्यों नहीं धारण चाहिए ? बसवण्णा उसी स्वर से घोषणा करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ ऐसा कार्य करना चाहिए जो समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। चाहे कोई भक्त हो या गुरु अथवा जंगम, किसी को भी अन्य जनों के श्रम का शोषण करते हुए परजीवी का निरर्थक जीवनयापन करने का कोई अधिकार नहीं है। इसका अंतर्निहित सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी आध्यात्मिक और भौतिक प्रगति का अनुसरण अपने "कायक" के माध्यम से करना चाहिए। भिक्षा वृत्ति तथा आलस्य के लिए समाज में कोई स्थान नहीं है।

कायक का एक और महत्वपूर्ण पक्ष व्यावसायिक स्वतंत्रता का वह सिद्धान्त है जिसका बसव समर्थन करते थे। उन्होंने उस कर्म सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह कर दिया जो यह आदेश देता था कि प्रत्येक मनुष्य का व्यवसाय जन्म द्वारा पूर्वनिर्धारित है। बसवण्णा जन्म, योनि या व्यवसाय के आधार पर किसी भी भेदभाव की निन्दा करते थे।

यह समाज में एक महान क्रान्ति थी। इसने जनता की नस-नस में आध्यात्मिक

और सामाजिक जागृति उत्पन्न कर दी। प्रारम्भिक रूप में कायक ने मनुष्यों का मूल्य उनके अपने व्यवसाय द्वारा निर्धारित करने के स्वभाव को परिवर्तित कर दिया। बसवेश्वर ने घोषित कर दिया कि कोई व्यवसाय दूसरे व्यवसाय से श्रेष्ठ या निकृष्ट नहीं है और केवल सत्यवादिता तथा निष्कपटता जीविका के साधनों के गुण-अवगुण निश्चत करती है। यह कायक का मूल स्वर है। बसव द्वारा घोषित सभी व्यवसायों की समानता कायक के दूसरे महत्वपूर्ण पक्ष की ओर ले जाती है। यह जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण स्थापित करता है। कायक में परिश्रम की गरिमा और दैवत्व दोनों एक साथ हैं। अपना जीविकोपार्जन केवल एक व्यवसाय नहीं है। यह परम अनासक्ति के साथ किया जाने वाला कार्य है और उसे समाज तथा व्यक्ति दोनों की आवश्यकताओं को पूर्ण करना चाहिए।

किसी व्यक्ति का अर्जन केवल उसी व्यक्ति की भौतिक और आध्यात्मिक प्रगति के उन्नयन में प्रयुक्त नहीं होना चाहिए अपितु समाज के कल्याण में भी उसका उपयोग उस त्रिपक्षीय दसोहा के रूप में होना चाहिए जो गुरु, लिंग और जंगम के प्रति समर्पण कहलाता है। यह केवल तभी संभव है जब किसी का व्यवसाय कायक का पवित्र कर्म या पूजा बन जाए।

बसवेश्वर ने बिज्जल के मंत्री का पद इसलिए नहीं ग्रहण किया था कि केवल अपने लिए धन-सम्पत्ति एकत्रित करें। वे ईश्वर के नाम पर सत्य भाव से स्पष्ट करते हैं कि उन्होंने राजा के अधीन सेवा करना क्यों स्वीकार किया—

यदि प्रातःकाल उठते हुए और अपनी आंखें मलते हुए,
मैं अपने पेट और अपनी वस्तुओं के लिए,
अपनी पत्नी और संतान के लिए,
चिन्तित होता हूं,
तो मेरा मस्तिष्क मेरे मस्तिष्क का साक्षी हो।

वे अपनेआप की या अपने परिवार की चिन्ता नहीं करते, न वह मंत्रीपद के वैभव और बल के प्रति आसक्त हैं :

यदि निकृष्टतम चाण्डाल के घर जाकर
मैं निकृष्टतम सेवा भलीभांति करता हूं,
मेरी एक चिन्ता केवल तेरी महिमा है,
किन्तु यदि मैं अपने पेट के लिए चिन्ता करता हूं तो,
हे भगवान कूडल संगम,
मेरे शीश को इसका मूल्य चुकाने दीजिए।

वे निकृष्टतम सेवा करने के लिए निकृष्टतम चाण्डाल के घर जाने को तत्पर हैं। किन्तु यह सेवा वे भली-भांति करेंगे। इस प्रकार कोई भी कार्य जो संसार के

कल्याण के लिए हाथ में लिया जाता है और जो भली-भांति पूरा किया जाता है, कायक है। ऐसा कायक भगवान की पूजा के समान उत्तम है।

शरणजन इसी अनुभूति के अनुसार कहते हैं कि कायक कैलाश (शिव का निवास) है। बसवण्णा और अन्य शरणों द्वारा निर्धारित इस प्रकार का आदर्श हम उत्तर गांधी युग में रहने वालों के लिए अधिक बोधगम्य है।

वास्तव में गांधी जी की रोटी-श्रम धारणा और बसवण्णा की कायक धारणा में विलक्षण समानताएं हैं। गांधी जी ने रश्किन की महान पुस्तक "अनटू दिस लास्ट" में अपने गहनतम विश्वासों को परिलक्षित होता अनुभव किया और इसने उन्हें इतना वशीभूत कर लिया कि उनका जीवन ही परिवर्तित हो गया। उन्होंने पुस्तक के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने का निश्चय किया। गांधी जी के अनुसार पुस्तक की मुख्य शिक्षाएं निम्नांकित हैं :

(१) सबकी भलाई में व्यक्ति की भलाई भरी हुई है।

(२) किसी अभिवक्ता के कार्य का मूल्य वही है जो किसी नाई के कार्य का मूल्य है। क्योंकि सभी को अपने कार्य से अपनी जीविका अर्जित करने का अधिकार वही है।

(३) श्रम का जीवन अर्थात् भूमि को जोतने वाले और शिल्पकार का जीवन जीने योग्य जीवन है।

हम देखते हैं कि यह सब सिद्धान्त बसवण्णा और अन्य शरणों द्वारा प्रतिपादित मत कायक का मर्म है।

प्रथम सिद्धान्त 'सब की भलाई में व्यक्ति की भलाई निहित है' पर बसवण्णा दृढ़तापूर्वक विश्वास करते थे। त्रिपक्षीय 'दसोहा' अर्थात् गुरु, लिंग और संगम को समर्पण मुख्यतः इसी सिद्धान्त पर आधारित है। वे कहते हैं कि हमें काया, बुद्धि और अर्जन क्रमशः गुरु, लिंग और जंगम को भेंट कर देना चाहिए। गुरु या शिक्षक लिंग का रहस्य प्रकट करता है, पूजा का प्रयोजन प्रकट करता है। अतएव यह दो व्यक्तिगत भलाई का संवर्धन करते हैं और व्यक्ति को उसके आध्यात्मिक उद्देश्य उपलब्ध करते हैं।

किन्तु जंगम का अर्थ भिन्न है। बसव ने यह शब्द इसके विस्तृततम अर्थ के साथ पढ़ा था। उनके लिए यह कोई विशेष जाति या पथ नहीं है। 'क्या लिंग में निष्ठुरता है। क्या जंगम में कोई जाति होती है ?' वे पूछते हैं। जंगम वह है जो सर्वव्यापी हो गया हो। सच्चा जंगम वह है जो अपने अहंकार का नाश करके समस्त संसार को अंगीकार करता है और उससे परे भी रहता है। अंतर्दर्शी ज्ञान के माध्यम से अन्तरिक्षीय चेतना में प्रविष्ट होने पर जंगम एक व्यक्ति नहीं रह जाता।

बसव की जंगम सम्बन्धी धारणा में एक प्रकार से अपने समस्त चल जीवों

सहित सारा संसार सम्मिलित प्रतीत होता है। इस प्रकार जंगम का "दसोहा" बहुत विस्तृत हो जाता है। समाज की प्रत्येक प्रकार की सेवा इसमें सम्मिलित होती है। अपने व्यवसाय के माध्यम से अर्जित मुद्रा समाज कल्याण के लिए जंगम के समक्ष समर्पित कर देना चाहिए : 'मेरे बन्धु, तुम जो एकटक दर्पण देख रहे हो, जंगम को देखो', बसव कहते हैं, 'क्योंकि उसके भीतर लिंग का वास है।' कूडल संगम का संदेश कहता है : 'चल और अचल एक है।'

जब तक यह नहीं समझ जाता, दर्शन के विषय में गाल बजाने का कोई उपयोग नहीं है। शब्दों की एक माला में क्या रखा है ? जब तक आप जंगम पर उसके स्नान के लिए जल नहीं डालते, पूजा के समय लिंग पर जल उड़ेलने या अभिषेक करने का क्या लाभ है ? अतः बसवण्णा हमें मानव जाति के हृदय में ही दैवी शक्ति देखने को कहते हैं। अपने एक वचन में वह इसे सुन्दरतापूर्वक इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं :

पत्थर का एक सांप देखकर, वे कहते हैं :
दूध डालो, अवश्य डालो,
एक असली सांप देखकर, वे कहते हैं :
"इसे मार दो";
यदि कोई जंगम, जो भोजन कर सकता है, पहुंचता है,
वे कहते हैं : "दूर हो जाओ",
और उस लिंग के सामने व्यंजन परोसते हैं,
जो भोजन नहीं कर सकता;
यदि तुम हमारे कूडल संगम के शरणों का अपमान करते हो,
तुम पत्थर से टकराने वाले मिट्टी का एक ढेला हो जाओगे।

लिंग पूजा केवल तभी पूर्णता प्राप्त करती है जब इस प्रकार की सार्वभौम जागृति उत्पन्न हो जाती है। निम्नांकित पंक्तियों में वह अर्थगर्भित रूप में यही तथ्य व्यक्त करते हैं :

यदि यह जानकर कि जड़ पेड़ का मुख है,
आप उसे नीचे सींचते हैं,
देखिए, ऊपर, ऊंचाई पर अंकुर प्रकट होते हैं,
यदि यह जानकर कि जंगम लिंग का मुख है,
आप उसे भोजन देते हो,
बदले में वह आपको एक प्रीतिभोज देता है।

लिंग और जंगम की भक्ति के ऐसे संश्लेषण के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज का संश्लेषण होता है। बसवण्णा के आध्यात्मिक लक्ष्य का यह विचित्र

चरित्र है। लिंग पूजा का फल अर्थात् व्यक्तिगत कल्याण जंगम की पूजा अर्थात् सर्वकल्याण में रखा है। इस प्रकार उनकी कायक धारणा ने परस्पर निर्भर और एक-दूसरे के पूरक व्यक्तिगत कल्याण और समाज-कल्याण का संश्लेषण परिलक्षित और प्राप्त किया।

गांधी जी के अनुसार रश्किन का दूसरा सिद्धान्त यह है कि वकील के कार्य का मूल्य नाई के कार्य-मूल्य के समान है। कायक का आधार यही है। बसवेश्वर ने इसे बहुत स्पष्ट कर दिया है कि व्यवसायों में उच्च और नीच जैसी कोई वस्तु नहीं है। कायक की गरिमा कार्य के प्रकार में नहीं अपितु उस भावना में निहित है जिसके साथ कार्य किया जाता है। मरलैया का जूते सुधारने का व्यवसाय उतना ही महत्वपूर्ण है जितना मंत्री के रूप में बसवेश्वर का व्यवसाय।

चाहे कोई भी कार्य हो, जब उसे समर्पण और परम विनम्रता की भावना के साथ किया जाता है, तो वह पूजा बन जाता है। बसवण्णा के युग में यह धारणा केवल एक आदर्श नहीं रही थी। बसवण्णा के मार्गदर्शन के चमत्कारी प्रभाव में १२वीं शताब्दी के शरणों द्वारा इसे एक विशाल परिमाण में सिद्ध कर लिया गया था। वे शरणों को सैकड़ों प्रकार के भिन्न-भिन्न व्यवसायों का अनुसरण करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। इसका प्रयोजन परिश्रम की गरिमा और महत्ता की वृद्धि ही नहीं अपितु समाज को अपना योगदान देना भी था।

इस प्रकार हम सैकड़ों शरणों को भिन्न-भिन्न व्यवसायों में संलग्न देखते हैं: मडिवाल मचय्या(धोबी) नुलिया चंडय्या (रस्सी बटने वाला) अंबीगर चौडय्या (मल्लाह) मैंडर केतय्या (टोकरी बनाने वाला) हड्यद आपन्ना (नाई) तुरुगही रामन्ना (चरवाहा) सुन्कद बैंकन्ना (करपाल) मदारा घुलैय्या (चंडाल) तलवर कामी देवी (चौकीदार) गाणद कन्नण (तेली वैद्य सन्गन्ना (वैद्य) सूजीकायाकदा रामन्ना (दर्जी) कोट्टानादा रैम्माबवे (धान कूटने वाला) मौलिगे मारय्या (काठहारा) और इसी प्रकार के अन्य। उनके नामों के पहले लगाये गए शब्द उस कायक का संकेत है जो प्रत्येक ने अपनाया है। पशु चराने, कपड़े धोने, बीजों से तेल निकालने और जूते बनाने का व्यवसाय करने वाले शरण सामाजिक-धार्मिक संस्थान 'अनुभव मंडप में बसवण्णा के साथ समकक्षतापूर्वक बैठ सकते थे और विचारविमर्श में भाग ले सकते थे। यह एक सराहनीय उपलब्धि है और एक ऐसा सुधार भी जिसे आज भी पूर्णतया प्रचलित नहीं किया जा सका।'

कायक का एक और पक्ष है: इसके द्वारा शारीरिक श्रम को दिया गया महत्त्व। शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं शरीर द्वारा ही होनी चाहिए। यह रश्किन द्वारा सुझाए गए इस सिद्धान्त के अनुकूल है कि श्रम का जीवन जीने योग्य जीवन है। बसवण्णा ने शारीरिक श्रम को उच्चतम सीमा तक उन्नत किया और वह स्वयं वास्तव में इस आदर्श के अनुसार आचरण करते रहे।

यद्यपि वह एक मंत्री थे, फिर भी, उन्होंने अपनेआप को कठोर परिश्रम के कार्य के लिए अर्पित कर दिया। वह कहते हैं :

एक हाथ में एक झाड़ू लिए,
सिर पर कपड़ा लपेटे,
मैं एक धरेलू टहलुए का बेटा हूं,
हे भगवान कूडल संगम;
मैं उस नौकरानी का बेटा हूं
जो दहेज में पलंग के साथ आयी थी।

यह एक अर्थगर्भित वचन है जिसमें वे अपनेआप को निकृष्ट जनों के समान कहते हैं और तथाकथित निकृष्ट कार्य में उनके साथ भाग लेते हैं।

यह हमें गांधी जी के एक कथन का स्मरण कराता है : 'हमें अपने बचपन से अपने मस्तिष्क पर यह विचार अंकित कर लेना चाहिए कि हम सब परिमार्जक हैं। उस व्यक्ति के लिए, जिसने यह तथ्य समझ लिया है, यह कार्य करने का सुगमतम मार्ग यह है कि वह "रोटी श्रम" "सफाई वाले" के रूप में प्रारंभ करे। इस प्रकार बुद्धिमत्तापूर्व अपनाया गया सफाई कार्य मनुष्य की समानता का वास्तविक गुणागुण विवेचन करने में सहायक होगा।' यही वह भावना है, जिसे बसवण्णा कायक में फूंकते थे और हमें गांधी जी में भी दिखाई देती है।

गांधी जी "रोटीश्रम" के साथ बुद्धिमान का विशेषण जोड़ते हैं और पुष्टि करते हुए कहते हैं कि केवल बुद्धिमान "रोटी श्रम" सामाजिक सेवा बन सकता है। सच्चा कायक भी यही है। समस्त व्यवसायों और उद्यमों को कायक नहीं कहा जा सकता।

"अनुभव मंडप" में एक बार यह परिस्थिति उत्पन्न होती है कि आदक्की मरय्या, जिसका कायक, मैदान में बिखरे धान के दाने इकट्ठा करना था, एक प्रश्न उठाता है और कायक के विषय में अपना संदेह व्यक्त करता है। 'जब यह कहा जाता है कि कायक ही कैलाश है, या कार्य ही पूजा है तो गुरु, लिंग और जंगम की आवश्यकता होती ही क्यों है ?' उसके इस प्रश्न पर अनुभव मंडप में विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श होता है। अंत में अल्लम प्रभु कायक के स्वभाव की व्याख्या करते हैं और उसे संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि कार्य तभी कायक होता है जब उसे सर्वथा निःस्वार्थ और अनासक्त भाव से किया जाता है। कार्य के माध्यम से ऐसी आत्म-त्याग की स्थिति में पहुंचने के लिए कुछ अभ्यास और अनुशासन अनिवार्य है और इसीलिए त्रिपक्षीय दसोहा अर्थात तन, मन और धन का गुरु, लिंग और संगम का समर्पण है।

अल्लम प्रभु के इन शब्दों पर मनन-चिंतन करते हुए मारय्या एक दिन अपना

कायक भूल जाता है। तब उसकी पत्नी लक्कमा अपना कर्त्तव्य भूल जाने के लिए उसकी भर्त्सना करती है। अतएव मारय्या अपने कायक पर चल देता है। जब वह लौटता है तो लक्कम्मा चकित होकर देखती है कि वह सामान्य मात्रा से अधिक धान के दाने ले आया है। वह उसको स्मरण कराती है कि अधिक दानों का लोभ उसका कायक नहीं बनता। वह आग्रह करती है कि मारय्या अधिक धानों को वहीं ले जाकर बिखेर दे जहां से उसने उठाया है। यह कायक का एक बहुत अर्थपूर्ण पक्ष प्रकट करता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति केवल उतना ही ले जितना उसे आवश्यक है तो इस संसार में किसी को भी अभाव का कष्ट नहीं होगा।

यहां हमें महात्मा गांधी के अविस्मरणीय शब्दों का स्मरण होता है: हमारी दिन प्रतिदिन की आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर्याप्त उपज देती है, और यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए पर्याप्त से अधिक कुछ नहीं लेता तो इस संसार में दरिद्रता नहीं रहेगी, भूख से मरता हुआ कोई मनुष्य नहीं होगा। इस प्रकार यदि प्रत्येक उतना ही लेता है जितना उसके लिए आवश्यक है और शेष भाग का अपने सह-जीवियों के कल्याण में समर्पण की भावना के साथ उपयोग करता है तो समाज में सम्पूर्ण सामंजस्य और व्यवस्था स्थापित हो जाएंगे। कायक में, जिसका व्यवहार बसवेश्वर के युग में लक्कम्मा जैसी साधारण महिला द्वारा भी किया जाता था, यह अर्थ निहित है।

बसवण्णा द्वारा परिलक्षित समाज एक आत्मनिर्भर समाज था जिसमें जाति, पंथ या योनि का कोई भेदभाव नहीं था। उसमें धनी और निर्धन का भी कोई भेद नहीं था। उन्होंने अपनेआप को निर्धन, पतित, निकृष्ट और कमजोर वर्ग के जनों के समान समझा और आग्रह किया कि सभी को स्वेच्छापूर्वक वह परिश्रम करना चाहिए जो निर्धनों के लिए अनिवार्य है, और दरिद्रता तथा सामाजिक अन्याय को समाप्त कर देना चाहिए।

बसवण्णा असंग्रह को सर्वाधिक महत्व देते थे और उनकी कायक धारणा इसी सिद्धांत पर आधारित थी। यहां एक रुचिकर आख्यान है जो, कहा जाता है, कि बिसवेश्वर के जीवन में घटित हुआ था। यह इस प्रकार हुआ कि एक रात बसवण्णा के घर में एक चोर घुस आया। घर में कोई वस्तु न पाकर उसने बसवण्णा की पत्नी की कर्ण मुद्रिकाएं छीनने का प्रयत्न किया। वह अचानक जग गयी और चीख पड़ीं। बसवण्णा उठ खड़े हुए और अपनी पत्नी की वह कर्ण मुद्रिकाएं चोर को दे देने का आदेश देते हुए उन्होंने कहा: यदि कोई चोर किसी अपने से बड़े चोर के घर में घुस आया है मैं उसे स्वयं कूडल संगम भगवान के अलावा कुछ और नहीं मानता। वह अपनेआप को एक वृहत्तर चोर कहते हैं क्योंकि कुछ ऐसी वस्तु पर उनका अधिकार था जिसे कोई जनसाधारण नहीं रख सकता। यह

गांधी जी के विचार के अनुरूप है जिसे इस प्रकार व्यक्ति किया गया है : 'मेरा मत है कि एक प्रकार से हम भी चोर हैं। यदि मैं कोई ऐसी वस्तु लेता हूं जिसकी मुझे अपने तात्कालिक उपयोग के लिए आवश्यकता नहीं है तो मैं उसे किसी अन्य व्यक्ति से चुरा लेता हूं।'

इस प्रकार बसवण्णा और गांधी के मध्य सामाजिक दृष्टिकोण और रोटी श्रम के संदेश में असाधारण समानताएं है। हम कभी-कभी देखते हैं कि गांधी बसवण्णा की बोली में बोल रहे हैं और उनके मत को प्रचलित करने का प्रयास कर रहे हैं। गांधी ने सर्वोदय के माध्यम से जो कुछ प्रतिपादित और स्थापित करने का प्रयास किया उसे बसवण्णा ने "कायक" के माध्यम से स्थापित कर लिया था। इसकी पुष्टि की जा सकती है कि बसवण्णा का कायक गांधी के सर्वोदय का सार भाग है।

सारांश यह है कि कायक पारंपरिक वर्ण या जाति के धर्मतन्त्र की जड़ काटता है और अपनेआप में समस्त मनुष्यों की समानता और उनकी गरिमा तथा उनके श्रम की महिमा भी मूर्त करता है। यह प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के अनुरूप है। इसका लक्ष्य कार्य और संपत्ति का भी सम्यक वितरण है। बसवेश्वर द्वारा परिकल्पित समाज में भिक्षा वृत्ति और निष्क्रियता के लिए कोई स्थान नहीं था।

इसे समाज की कायक प्रणाली कहा जा सकता है। यहां प्रत्येक व्यक्ति अपने शरीर, मन और हृदय की आवश्यकताएं पूर्ण करने के लिए कार्य करता हैं, जिसका अर्थ है मनुष्य की आंतरिक क्षमताओं का सर्वांगीण विकास। शोषण को किसी भी रूप में चाहे वह आर्थिक, सामाजिक या धार्मिक कैसा भी हो, सहन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार कार्य करता है और अपने व्यवसाय की प्राप्ति समाज को अर्पित कर देता है। यहां कहीं लाभ नहीं है और इसलिए कृत्रिम अभाव नहीं है, सामाजिक अन्याय नहीं है और सामाजिक क्रूरता या अत्याचार नहीं है। जीवन के समस्त पक्षों में अछूतों सहित सभी मनुष्यों के लिए अवसरों की समानता उपलब्ध है। प्रत्येक स्त्री या पुरुषों बिना किसी मध्यस्थ के अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों द्वारा आध्यात्मिक अनुसरण के माध्यम से अपनी मुक्ति खोजता है। इसीलिए मंदिरों और पंडागीरी के चारों और केन्द्रित अंध-विश्वास और रुढ़ियां यहां नहीं हैं। कार्य और पूजन त्रिपक्षीय दसोहा अर्थात गुरु, लिंग और जंगम को समर्पण करने में अभिन्न रूप से अनुप्राणित हैं और साथ-साथ धन लोलुपता के अभिप्राय को परिष्कृत करके आध्यात्मिक अभिप्राय बना देते हैं। यह किसी स्वप्नदृष्टा दार्शनिक का आदर्शलोक नहीं है। अपितु एक कार्यकर्ता मनुष्य और नवयुग के एक देवदूत का दर्शन है।

कायक के इस संदेश ने युग-दीर्घ धार्मिक अंधविश्वास से जनता का उद्धार किया और उसे आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, स्वतंत्रता और स्वतंत्र-चिंतन में पुनः संलग्न कर दिया। यदि इसे समुचित परिप्रेक्ष्य में समझ लिया जाए तो यह एक नवीन प्रकाश दे सकता है और हमारे वैज्ञानिक युग की समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

एक महान कवि

'महान मनुष्य दुर्लभ है, महान कवि दुर्लभतर है किन्तु एक महान मनुष्य जो महान कवि भी हो, सर्वाधिक दुर्लभतम है।' यह एक विख्यात कथन है। बसव एक महान मनुष्य और एक महान कवि का दुर्लभतम संयोग हैं। वे एक महान मनुष्य हैं जिसमें एक रहस्यवादी, एक समाज सुधारक, एक स्वतंत्र विचारक, और नवयुग का एक देवदूत संयुक्त हैं। उनका प्रमुख प्रयोजन साहित्यिक रचना नहीं अपितु जीवन के उच्चतम उद्देश्य की उपलब्धि और जनसाधारण के सर्वोत्तम कल्याण के लिए पथ प्रशस्त करना था।

उनकी सब से बड़ी देन यह थी कि जनता के मध्य शाश्वत सत्यों और आदर्शों का प्रचार किया और दैवी संदेश को प्रत्येक गृह और हृदय तक पहुंचाया। अतएव उस प्रत्येक अनुभूति या विचार को जिसने उनके मस्तिष्क को प्रेरित किया, बुद्धि को उत्तेजित किया और जो उनके हृदय में विकसित हुई या हुआ उन्होंने साधारण किन्तु सशक्त वचन के रूप में अभिव्यक्त कर दिया।

वास्तव में १२वीं शताब्दी के सभी शरण, जो वचन लिखते थे, अपनी दृष्टि में यही लक्ष्य रखते थे। वे समाज के दोषों और द्विविधाओं तथा अपने आध्यात्मिक अनुभवों और विचारों को ऐसी भाषा में व्यक्त करना चाहते थे जो सब के लिए सरलतापूर्वक बोधगम्य हो। अपना उच्चतम सामाजिक कल्याण का उद्देश्य सिद्ध करने के लिए उन्हें एक सर्वथा नवीन विधा को अपनाना पड़ा। इस प्रयास में उनके कहे हुए शब्द "वचन" बन गए जो एक निश्चल जलकुंड में एक विशाल बाढ़ के प्रवाह की भांति आए और जिन्होंने कन्नड़ साहित्य की प्रवृत्ति ही परिवर्तित कर दिया।

'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ लिटरेचर' में डबल्यू० एच० हडसन कहते हैं, 'साहित्य मूलभूत रूप में भाषा के माध्यम द्वारा जीवन की एक अभिव्यक्ति है।' यह कथन "वचन साहित्य" पर सामान्यतः प्रयुक्त हो सकता है और बसवण्णा के वचनों पर तो विशेषतः प्रयुक्त हो सकता है। उन्होंने जीवन को भली-भांति विभिन्न कोणों से देखा था। उन्होंने भौतिक स्तर के सामान्य संघर्ष से प्रारंभ किया और वे अलौकिक अनुभव के उच्चतम स्तर तक पहुंचे। वे तथ्यों में

गहरायी तक प्रवेश कर सके क्योंकि वे कविसुलभ महान अंतर्दृष्टि से संपन्न एक उत्साही प्रेक्षक थे। उनकी महान प्रतिभा को—जो सारे पर्यवेक्षणों और भांति-भांति के अनुभवों द्वारा समृद्ध थी—वचनों के रूप में अभिव्यक्ति मिली है।

वचन का शाब्दिक अर्थ गद्य है। किन्तु अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर वह एक नवीन आयाम प्राप्त कर लेता है। कन्नड़ साहित्य में इसने एक अद्भुत नवीन शैली प्रारंभ कर दिया है। शरणों द्वारा रचित वचन गद्य रूप में हैं। किन्तु उनका स्वर कविता का प्रेरित स्वर है। उन्हें संक्षिप्त गद्यगीत कहा जा सकता है। उनमें कविता का गीतात्मक लालित्य और गद्य का लयबद्ध व्यंजन दोनों हैं, यद्यपि वचनों में छंद और लय संबंधी कोई औपचारिक नियम नहीं हैं, उनमें उनकी अपनी एक लय है जो एकघाती है और कभी-कभी अपद्यात्मक हो जाती है। किन्तु वह विशिष्ट वचन के भावनात्मक उत्साह और विचार-विषय के अनुसार प्रचंड है। तत्व मीमांसा प्रतिपादित करने और विस्तृत वर्णन करने वाले वचनों को छोड़कर सामान्यतः वचन संक्षिप्त होते हैं और प्रत्येक वचन के अंत में शरणों के व्यक्तिगत देवता के समक्ष उनके समर्पण की मुद्रा अंकित रहती है। बसवण्णा के वचन में कूडल संगम देव, अल्लम प्रभु के वचन में गुहेश्वर और अक्का महादेवी के वचन में चेन्न मल्लिकार्जुन यही हैं।

बसवण्णा वचन साहित्य के जनक नहीं हैं। उनके पूर्व देवर दासिमय्या ने परिपक्व रूप और शक्ति के अनेक वचनों की रचना की थी। उन्हें कम से कम बसवण्णा का वरिष्ठ समकालीन माना जा सकता है। इस समय यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि देवरदासिमय्या को प्रथम वचनकार या वचनों का रचयिता समझा जा सकता है। यह संभावना भी है कि इसका जीवन आरंभ कुछ और पूर्व ही हुआ हो। इस वचन विधा में उस समय एक नवीन उत्साह और जीवन-शक्ति प्राप्त किया जब असंख्य वीरशैव संत स्त्री-पुरुषों में जो बसवण्णा द्वारा प्रारम्भ की गयी धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति में भाग लेते थे, इसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुन लिया।

किन्तु वचन साहित्य के क्षेत्र में बसवण्णा की सर्वोपरिता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। उन्होंने इस साहित्यिक विधा को पुष्ट और समृद्ध किया तथा इसे सार्वभौम साहित्य की ऊंचाई तक पहुंचा दिया। उनके वचन दुर्लभ रहस्यवादी अनुभव की आभा, उत्तम अलौकिक ध्यान की अंतर्दृष्टि और हृदयद्रावक भक्ति की प्रबलता के स्वतः प्रवर्तित उद्गार हैं जो संक्षेप में वर्तमान और भविष्य के जीवन को समृद्ध और पुष्ट करते हैं। बसवण्णा में अपने पाठकों के हृदय तक अपना व्यापक अनुभव पहुंचाने की असाधारण शक्ति थी। प्रतिमाएं और बिम्ब, उपमाएं और रूपक, बिम्ब विधान और शब्द-चित्रण और उदाहरण, लोकप्रसिद्ध उक्तियों और जन समुदाय की भाषा के अनगणित अंश सभी उनके विशाल

अनुभव और उनकी मानवीय अनुकम्पा के ही नहीं, अपितु कलात्मक उपलब्धि के भी जीवित साक्षी हैं।

वह उस कृत्रिम अंतर को मिटाने में सफल हुए जो प्राचीन कन्नड़ कविता की साहित्यिक भाषा और जनसाधारण के बोलचाल की भाषा के मध्य बढ़ गया था। उन्होंने अपने समृद्ध अनुभवों, अन्तर्दृष्टि और महान आध्यात्मिक सिद्धि को एक बहुत साधारण किन्तु प्रभावशाली भाषा में प्रतिष्ठापित कर दिया है। इस कार्य ने कन्नड़ साहित्य की रूपरेखा और अंतर्वस्तु में एक महान क्रान्ति उत्पन्न कर दिया।

उनके वचन उनके हृदय से स्वेच्छापूर्वक निकलते हैं और वचनों की भाषा प्रयत्नहीन सरलता और गरिमा के साथ प्रवाहित होती है। उनके वचनों में काव्यालंकार भी किसी सोद्देश्य प्रयत्न के कारण नहीं, अपितु सरलता और आनंदपूर्वक प्रकट होते हैं। उनके अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए ये वचन अपरिहार्य साधन के रूप में स्वतः प्रवर्तित और अनिवार्य हैं। पिंडार कहेंगे कि यहां शब्द विचार का बन्धु है। इस विषय में शरणों के मध्य भी अल्लम प्रभु और अक्का महादेवी जैसे बहुत थोड़े शरण और कभी-कभी चेन्नवसवण्णा, सिद्धराम और कुछ अन्य उनकी उच्चता तक पहुंच सके हैं।

निम्नांकित वचन उन विभिन्न स्तरों का एक सुन्दर चित्रण है जिन पर बसव के वचन कार्यरत हैं :

यदि आप बोलते हैं तो आपके शब्दों को
मोती होना चाहिए जो एक सूत्र में गूंथे हुए हों।
यदि आप बोलते हैं तो आपके शब्दों को
माणिक से निकलती हुई कांति की भांति होना चाहिए।
यदि आप बोलते हैं तो आपके शब्दों में
आकाश-विभाजक पारदर्शी दमक होनी चाहिए।
यदि आप बोलते हैं तो महान भगवान अवश्य कहें
कि हां, हां, यह अति सत्य है।
किन्तु आपके शब्द से यदि आपकी कृति भिन्न है
तो कूडल संगम आपकी चिन्ता करेंगे क्या ?

यहां एक प्रकार से उन्होंने अपने वचनों का सार स्वयं व्यंजित किया है। यह भी रुचिकर है कि उपमा मोती की विशेषता से विकसित होते हुए आत्म-सिद्धि की आध्यात्मिक विशेषता तक पहुंचती है। अंतिम पंक्ति में वे कहते हैं कि शब्द और कृति को एक हो जाना चाहिए और केवल तभी भगवान की कृपा मिलती है। बसवण्णा में हमें शब्द और कृति का सम्पूर्ण संयोजन मिलता है। उन्होंने अपनी

कार्यशक्ति और साथ ही वाक्शक्ति दैवी प्रसन्नता को अर्पित कर दिया है और अपने कथनों में भगवान का गौरव प्रकट किया है। इस प्रकार का एकीकरण वास्तव में असाधारण है।

बसवण्णा कविता लिखने में जुटे हुए कवि नहीं है। उन्हें प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन करना भी रुचिकर नहीं है। उनकी कविता जीवन की कविता है। जीवन का सौन्दर्य स्वतः उनके शब्दों में काव्य बन गया है। उन्होंने अन्तरात्मा के सौन्दर्य का वर्णन किया है। उनके वचनों में हमें उस यात्रा के समस्त विभिन्न शिविर मिलते हैं जो कोई जिज्ञासु प्रारम्भ करता है। सांसारिक जीवन की सीमाएं और उसकी व्यर्थता, मन की भंगुरता और उसकी निकृष्टता, पाखंडी भक्ति और तथाकथित धार्मिक जनों का दो प्रकार का व्यवहार और कपट एक ओर तथा दूसरी ओर हृदय की पवित्रता, उच्चकोटि की भक्ति और शरणों का गौरव, इन सबको उन्होंने मानव जीवन के आदर्श की भाव भूमि में गम्भीर विचार और कलात्मक अभिव्यक्ति दिया है।

सांसारिक जीवन की सीमाओं और भंगुरता के विषय में उनके कहे हुए शब्द इतने सशक्त हैं कि पाठक का मस्तिष्क आत्मनिरीक्षण की ओर उन्मुख कर देते हैं। अपनेआप को गायक बनाते हुए उन्होंने अपने वचनों में एक सराहनीय कोटि के आत्मज्ञान और आत्म-अन्वेषण को प्रदर्शित किया है। अपने एक वचन में वे कहते हैं :

मेरा जीवन उस चूहे जैसा है,
जो थैलों के ढेर पर चढ़ा बैठा है,
और जब तक मर नहीं जाता उससे मुक्त नहीं होता।

वह उस चूहे की उपमा का प्रयोग करते हैं जो थैलों के ढेर में विराजमान है। यह हमारे हृदय में सीधा प्रवेश करती है और हमें समझाती है कि हम एक चूहे से किसी प्रकार उत्तम नहीं हैं। एक अन्य वचन में वे कहते हैं :

मेरी दशा उस दादुर की-सी है,
जो सर्प की छाया में पड़ा है,
यह बहुरंगी विश्व,
संपेरा और सांप के मध्य,
सौहार्द के समान है,
जब इस विश्व के सांप ने
मेरे भीतर अपना विष व्याप्त कर दिया—
वे इसकी पंचपक्षीय चेतना के लक्ष्यों को पुकारते हैं—
आगे पग बढ़ाना नहीं हुआ।

इस प्रकार एक-दूसरे से अधिक सशक्त सैकड़ों "उपमाएं" उद्धृत की जा सकती है। अव्यवस्था के उलटे-पुलटे जीवन को प्रकट करने के लिए वे इस उपमा का उपयोग करते हैं—"चमगादड़ के जीवन जैसा।" मरणशील मनुष्यों द्वारा सांसारिक जीवन का आनंद लेने के व्यर्थ प्रयास की ओर संकेत करते हुए वह कहते हैं : सांप के मुंह में पकड़ा हुआ मेंढक आती-जाती मक्खी के लिए भूख के साथ लालायित होता है। वह यह भी कहते हैं : 'सजावट के लिए लायी गयी डालियां बलिदान के लिए लाया गया बकरा खाता है।' वह मन की तुलना गूलर के साथ, पालकी में सवार कुत्ते के साथ, और घी के लिए तलवार की तेज धार चाटते हुए कुत्ते के साथ प्रभावकारी रूप से करते हैं। इस प्रकार के उदाहरण उनके प्रत्येक वचन में देखे जा सकते हैं।

उनके कुछ वचन उनकी आत्मा की गंभीरतम पुकार उत्कृष्ट रूप में प्रतिध्वनित करते हैं। उदाहरण के लिए :

हे भगवान आप ने ही फैलाया है
यह हरियाली, इंद्रिय-चरागाह,
मेरी आंखों के सामने;
एक जानवर क्या जानता है ?
समस्त हरियाली और घास की ओर खिंच जाता है।
मुझे इंद्रिय-मुक्त करो भगवान !
और पवित्रता का आहार पेट भर करने दो।
पीने के लिए मुझे सच्ची बुद्धिमानी चाहिए।
मेरा लालन-पालन करो, हे भगवान,
कूडल संगम।

निम्नांकित वचन मन की चंचलता और दुर्बलता का एक अर्थपूर्ण और अभिव्यंजक चित्र प्रस्तुत करता है :

बाड़े में घूमती हुई छिपकली जैसा
मेरा मन भी है भगवान।
उस गिरगिट की भांति जो प्रतिबार भिन्न रंग प्रकट करता है
मेरा मन भी है भगवान।
उड़ती हुई लोमड़ी की-सी दशा में
मेरा मन भी है भगवान।
जैसे कि द्वार पर भोर की पौ फूटती है
उस अंधे आदमी के लिए जो जगता है

नीरव हुई रात में।
क्या केवल चाहने से ही
उनकी धर्मपरायणता स्वार्थहीन है ?
कूडल संगम भगवान !

हमें उनके वचनों की भाषा प्रत्येक अवसर पर समान मिलती है और उसे उसकी सारी भव्य शक्ति और आकृति के साथ अभिगृहीत कर सकती है। उनकी आत्मा की आध्यात्मिक लालसाओं को कन्नड़ के कुछ सुन्दरतम बिम्बों में अभिव्यक्ति मिली है। यहां निम्नांकित वचन उद्धृत किया जा सकता है :

मेरा मन पिघलाओ और उसके दाग दूर कर दो,
इसकी परीक्षा लो और इसे अग्नि में पवित्र कर दो।
इस पर हथौड़ा चलाओ इस प्रकार
कि उसके प्रहारों से यह मेरा हृदय शुद्ध सोना हो जाए।
फिर मुझे पीट-पीट कर, हे महान शिल्पकार !
अपने भक्तों के पगों के लिए पायल बना लो।
भगवान कूडल संगम मेरी रक्षा करो।

इस प्रकार वह उपयुक्त बिम्बों और प्रतीकों या सजीव शब्दचित्रों के प्रयोग द्वारा प्रायः महान काव्यात्मक ऊंचाइयों पर पहुंचते हैं। उनके उद्‌गारों की सहजता और शान्तिदायकता अद्‌भुत है।

यह तथ्य स्पष्ट करते हुए कि दुर्बल और निकृष्ट मन भक्ति का निष्पादन नहीं कर सकते, वह पूछते हैं : 'यदि मदिरा के पात्र पर आप पवित्र भस्म मल देते हैं तो जब तक उसका अंतर पवित्र नहीं है उसे कौन स्वच्छ करता है ?' और यह भी : 'कोई पत्थर कितनी भी देर जल में पड़ा रहे, क्या वह सीझकर कोमल हो सकता है ?' वह आंतरिक पवित्रता की आवश्यकता और आडंबरशील भक्ति की व्यर्थता को प्रतिबलित करते हैं :

आप बांबी पर प्रहार करेंगे तो
क्या सांप मर जाएगा ?
आपके कठोरतम प्रायश्चित्त से क्या होगा ?
क्या भगवान कूडल संगम उनका विश्वास करेंगे,
जिनके हृदय पवित्र नहीं हैं ?

झाड़ी में सांप की खोज किए बिना उसे पीटने का कोई उपयोग नहीं है। जो दीपक घर के अंधकार को नहीं हटाता उसका क्या उपयोग है ? इसी भांति पूजा का क्या उपयोग है यदि वह हृदय के अंधकार को नहीं मिटाती ?

हाथी अंकुश से डरता है;
और पहाड़ गाज गिरने से;
अंधकार भयभीत है प्रकाश से;
और जंगल घबराता है आग से;
इसी प्रकार पांच प्रमुख पाप
भगवान कूडल संगम के नाम से कांपते हैं।

अज्ञान की तुलना एक बलवान हाथी से की गई है, एक पहाड़ और घोर अकर्मण्यता के अंधकार से की गयी है। किन्तु पवित्र हृदय और गहरे प्रेम के साथ भगवान के नाम का आह्वान हाथी के लिए एक अंकुश, पहाड़ के लिए गाज और अंधकार के लिए प्रकाश है। ये पुनरावृत्त बिम्ब भगवान के नाम की महिमा प्रभावशाली शैली में संप्रेषित करते हैं।

प्रत्येक वर्णित विषय को पाठक के हृदय तक पहुंचाने में बसवण्णा प्रचुर रूप से सफल हुए हैं। जीवन का गंभीर अनुभव, मर्मवेधी अंतर्दृष्टि, बहुमुखी ज्ञान और सर्वमुखी प्रतिभा की भावभूमि में उनकी कल्पना फली-फूली है और आकार तथा बिम्ब का उद्‌भव हुआ है। उनका कवि-उचित उत्साह केवल उनके प्रभावशाली विचार और अभिव्यक्ति में ही नहीं प्रकट होता अपितु उनकी आध्यात्मिक चेतना की प्रगति में विभिन्न चरण भी निर्धारित करता है। उनकी प्रतिभा प्रत्येक रंग की अभिव्यक्ति तक पहुंची है। सामाजिक विषमताओं और मतभेदों से संघर्ष करने वाले जिज्ञासुओं के उद्‌गारों से प्रारंभ करके दैवी परमानंद के अनुभव के उल्लासपूर्ण उद्‌गारों तक विचरण करती है। इस पर अनुमानतः तीन चरणों में विचार किया जा सकता है। अनुभव सिद्ध चेतना, निर्लिप्त चेतना और भावातीत चेतना।

कविता का मूल विषय बाह्य विश्व है। किन्तु कविता की महानता का निर्णय वह भावना करती है जिसके साथ इस पर कवि की प्रतिक्रिया व्यक्त होती है, और वह प्रेरणा करती है जो कवि इससे प्राप्त करता है। विश्व के समस्त विभाजनों और अंतरों के बीच बसवण्णा की काव्यात्मक प्रज्ञा स्वर्गीय ऊंचाइयों में प्रवाहित हुई है किन्तु पृथ्वी का उत्थान करने के लिए अनुकम्पापूर्वक सदैव उतर आयी है। वह कहते हैं—

काया पिटारी है और मन सांप,
देखो दोनों कैसे साथ-साथ रहते हैं,
सांप और पिटारी;
आप कुछ नहीं जानते
कि यह कब आपकी हत्या कर देगा,

कब आपको डस लेगा;
हे भगवान कूडल संगम !
यदि मैं दिन-प्रतिदिन आपकी पूजा कर सकता हूं
तो यह सम्मोहन है।

सांप और पिटारी के सुन्दर प्रतीक जिज्ञासु की अनुभूतिमूलक चेतना और उसके पार पहुंचने की प्रवृत्ति भी अभिव्यक्त करते हैं। कलात्मक अभिव्यक्तियों के रूप में भव्य ऐसे वचनों की एक बड़ी संख्या में बसवण्णा ने अनुभूतिमूलक चेतना के विकास का और उसके भी पार पहुंचने के लिए उच्चतर से उच्चतर आरोहण का आग्रह किया है।

विकास वीथि में दूसरे पग को निर्लिप्त चेतना कहा जा सकता है। विविध वचनों में काव्यात्मक अंतर्बोध द्वारा यह विशदतापूर्वक और प्रभावशाली रूप में प्रकट हुई है :

किसी सक्रिय भक्त का तन
केले के पेड़ का तना जैसा अवश्य होगा;
उसके बाहरी आवरण से यदि आप छिलका-छिलका उतार दें
जो भीतर गूदा सर्वथा नहीं हो सकता।
हमारे अपनों ने निगल लिया है
उत्तम फल और साथ ही बीज भी,
भगवान कूडल संगम निर्देश दो
मुझे अब पुर्नजन्म न मिले।

वे यह परामर्श देते हैं कि कर्म अनपेक्ष अनासक्ति की भावना से ही किया जाना चाहिए।

वे कहते हैं कि हमें संसार (सांसारिक जीवन) के मध्य रहना चाहिए और साथ ही जिज्ञासु भी होना चाहिए। हमें इस संसार से भागने की आवश्यकता नहीं है। हम चाहे जिस प्रकार के जीवनपथ पर हों हमें पूर्ण अनासक्ति की भावना प्राप्त करना है जो केवल मेधावी कर्म अर्थात् कार्य के द्वारा संभव है। इस बिम्ब में यह बात वह प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करते हैं : आकाश में उड़ने वाली पतंग में भी नियंत्रण की डोर अनिवार्य होती है, कायक के लिए भी अपनेआप को कर्म में लगाना आवश्यक होता है। क्या कोई गाड़ी धरातल के बिना चल सकती है ? हमें एक पतंग की भांति उड़ना है। किन्तु संसार की नियंत्रण डोर और समुचित अनुशासन से संपर्क भी अवश्य रखना है। केवल तभी बसवण्णा की भांति यह कहना संभव है:

यह नश्वर संसार और कुछ नहीं निर्माता की टकसाल है,
जो जन यहां पुण्य अर्जित करते हैं वहां भी अर्जित करते हैं
और जो यहां अर्जन नहीं करते, हे भगवान कूडल संगम,
वहां भी नहीं करते।

यह एक परामर्शगर्भित सुन्दर प्रतीक है।

इस प्रकार की पूर्ण अनासक्ति प्राप्त कर लेने पर कोई जिज्ञासु, चेतना के समस्त निम्नस्तर पार कर लेगा और "समरस प्रज्ञा" या "भावातीत चेतना" की उस अन्तिम ऊंचाई पर पहुंचेगा जिसकी अनुभूति लिंग और अंग की अभिन्न एकता के फलस्वरूप होती है। एकता की महत्ता पर उनके कुछ वचन हम इसके पूर्व पढ़ चुके हैं। हम स्मरण कर सकते हैं कि भक्ति की भूमि से उपजा हुआ उनके जीवन का फल किस प्रकार कूडल संगम को समर्पित किया गया था। अपवित्रता की त्रिविधि प्रणाली को नष्ट करके वह नीरवता में ऐसे डूब गए जैसे प्रकाश महाप्रकाश में विलीन हो जाता है। एक और वचन इस प्रकार है :

हमारे महान भगवान कूडल संगम की छवि से
आंखें भर जाने पर देखने को शेष कुछ नहीं रहता,
उनके स्वर से कर्ण परिपूर्ण हो जाने पर
सुनने के लिए कुछ नहीं रह जाता,
उनकी कृपा से हाथ भर जाने पर
आराधना के लिए कुछ नहीं रह जाता,
उनके ध्यान से जब हृदय भर जाता है,
चिन्तन के लिए कुछ नहीं रहता।

देखने, सुनने और पूजा करने पर किसी साधारण जन की शारीरिक अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से, किसी कवि की अंतर्दर्शी अभिव्यक्ति और रहस्यवादी की नैसर्गिक अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है। जब चारों ओरसे नैसर्गिक स्पर्श की अनुभूति होती है, तो आंख, कान, मन सभी उस अनुभव ऊपर तक भर जाते हैं।

एक वचन और है जिसमें उन्होंने इस नैसर्गिक घनिष्ठता को इस प्रकार व्यक्त किया है :

भव्यतापूर्वक महान महा स्वयंभू मैं,
वर्तमान किसी भी महानतम से
महान मैं हूं।
मैं वह उपाय कैसे बतला सकता हूं

जिसके द्वारा शब्द को मौन में परिणित किया गया ?
कि मैं भगवान कूडल संगम के उत्तुंग प्रकाश के भीतर हूं।

और जैसा वह एक और वचन में जतलाते हैं, प्रकाश प्रकाश का सिंहासन बन जाता है, प्रकाश प्रकाश में मिल जाता है। इस प्रकार बसवण्णा इतने गूढ़ और सूक्ष्म विचार और अनुभव, सीधे-सादे किन्तु ऐसे सशक्त और सांकेतिक शब्दों में अभिव्यक्त कर सकते हैं जो जीवन-दर्शन को मूर्त और संचारित करने में समर्थ है।

बसव के वचनों को पढ़कर कविता पर अरविंद के कथन का सत्य हमारी समझ में आ जाता है। वे कहते हैं : 'कविता चेतना के उच्चतर स्तर के सत्य को निम्नतर की भाषा में अनूदित करती है।' बसवण्णा ने चेतना के सभी स्तरों का सत्य जन-साधारण की भाषा में अनूदित किया है। उनके वचनों में वह सभी अनुभूतियां और वह सभी स्तर समाविष्ट हैं जो हमारे जीवन को उन्नत और अभिजात बनाते हैं। उनको उपलब्ध उच्च स्तर आध्यात्मिक आदर्शों, उनके जीवन-दर्शन, उनके पकड़े हुए पथ और उनके आरोहित शिखरों, सभी को वचनों के रूप में अभिव्यक्ति मिली है।

जनसाधारण के साथ उनकी घनिष्ठता ने उनकी भाषा को लोकशक्ति का एक नवीन पुट दिया है। वे लोकोक्तियों का प्रचुरतापूर्वक प्रयोग करते हैं। उनके कुछ कथन स्वतः लोकोक्तियां बन गए हैं। सामाजिक और धार्मिक क्रान्तिकारी होने के अतिरिक्त वे कन्नड़ साहित्य के क्रान्तिकारी भी थे। उन्होंने कन्नड़ साहित्य में जनता की जीवित भाषा को उसके केंद्रीय स्थान पर पुनः संस्थापित करके क्रान्ति उत्पन्न कर दिया था।

भाषा की सूक्ष्मताओं और संभावनाओं पर उनका अधिकार विलक्षण और सराहनीय है। न्यूनतम शब्दों से अधिकतम दर्शन प्रभाव प्राप्त करने वाले अपने शब्द-चित्रों में वे पारंगत हैं। उनके काव्यालंकार उनके शब्दों और बिम्बों के अर्थ भेद और गढ़े हुए शब्दों का उनका चयन संगीत और चित्रण का एक संगम है। उनके वचनों के विशिष्ट संगीतात्मक गुण का अनुवाद संभवतः नहीं किया जा सकता। इसी अनुपात में यहां उद्धृत वचनों में उनकी मौलिक कलात्मक संगीत वृत्ति नहीं आ सकी। यहां यथासंभव केवल अर्थ वृत्ति को यथावत रखने का प्रयास किया गया है। इस सीमा के साथ भी मूलपाठ में उद्धृत वचनों की भावात्मक अंतर्वस्तु, कल्पना और अभिव्यक्ति की सुन्दरता को किसी सीमा तक अनुभूत और साकार करना संभव है।

उपसंहार में कहा जा सकता है कि बसवण्णा ने जनता की जीवन-नाड़ी को ही प्रभावित कर दिया, देश की साहित्यिक और रहस्यवादी परंपराओं को समृद्ध किया, जनता की आकांक्षाओं और उसके उद्देश्य को एक सर्वांग जीवन के एकीकृत दर्शन की ओर उन्मुख किया और इसीलिए वह सब प्राप्त किया जो

किसी आध्यात्मिक आंदोलन को प्राप्त हो सकता है। यदि उस युग के कुछ प्रासंगिक अपरिहार्य तत्वों को अलग कर दिया जाए, तो बसवेश्वर द्वारा प्रतिपादित आदर्श सभी युगों और सभी भूभागों के लिए उपयुक्त हैं।

हम कह सकते हैं कि आधुनिक युग के हम लोग उनकी क्रान्ति का महत्व समझने के लिए, उनके परिलक्षित धर्म और समाज के स्वभाव और उनके उपदेश के अनुसार उनके आचरण को समझने के लिए अधिक सुसज्जित हैं। उनका जीवन और उनकी शिक्षाएं जिनमें उन्होंने महानतम आधुनिक विचारक कार्ल मार्क्स और महात्मा गांधी का पूर्वानुमान किया था, शक्तिशाली प्रकाशस्तम्भों की भांति चमकते हैं और सम्पूर्णता की खोज में मानव जाति का मार्ग-दर्शन करते हैं। ये प्रकाशस्तम्भ अपनी दीप्ततम किरणों द्वारा समस्त निकट आने वालों के जीवन आलोकित करते हैं।

इस माला में अब तक प्रकाशित हिन्दी पुस्तिकाएँ

लक्ष्मीनाथ बेज़बरुआ : हेम बरुआ / **बंकिमचन्द्र चटर्जी** : सुबोधचन्द्र सेनगुप्त / **बुद्धदेव बसु** : अलोकरंजन दासगुप्त / **चण्डीदास** : सुकुमार सेन / **ईश्वरचन्द्र विद्यासागर** : हिरण्मय बनर्जी / **जीवनानन्द दास** : चिदानन्द दासगुप्त / **काज़ी नज़रुल इस्लाम** : गोपाल हाल्दार / **महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर** : नारायण चौधुरी / **माणिक बन्द्योपाध्याय** : सरोज मोहन मित्र / **प्रमथ चौधुरी** : अरुणकुमार मुखोपाध्याय / **राजा राममोहन राय** : सौम्येन्द्रनाथ टैगोर / **ताराशंकर बन्द्योपाध्याय** : महाश्वेता देवी / **सरोजिनी नायडू** : पद्मिनी सेनगुप्त / **तरुदत्त** : पद्मिनी सेनगुप्त / **गोवर्धनराम** : रमणलाल जोशी / **मेघाणी** : वसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी / **नान्नालाल** : उमेदभाई मणियार / **नर्मदाशंकर** : गुलाबदास ब्रोकर / **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र** : मदन गोपाल / **देवकीनन्दन खत्री** : मधुरेश / **जयशंकर प्रसाद** : रमेशचन्द्र शाह / **महावीरप्रसाद द्विवेदी** : नन्दकिशोर नवल / **जायसी** : परमानन्द श्रीवास्तव / **प्रेमचन्द** : प्रकाशचन्द्र गुप्त / **राहुल सांकृत्यायन** : प्रभाकर माचवे / **रैदास** : धर्मपाल मैनी / **श्यामसुन्दरदास** : सुधाकर पाण्डेय / **सुभद्रा कुमारी चौहान** : सुधा चौहान / **बसवेश्वर** : एच० थिप्पेरुद्रस्वामी / **बी० एम० श्रीकंठय्य** : ए० एन० मूर्तिराव / **विद्यापति** : रमानाथ झा / **ए० आर० राज राज वर्मा** : के० एम० जॉर्ज / **चन्दु मेनन** : टी० सी० शंकर मेनन / **कुमारन आशान्** : के० एम० जॉर्ज / **महाकवि उल्लूर** : सुकुमार अषिकोड / **वल्लत्तोल** : बी० हृदयकुमारी / **दत्तकवि** : अनुराधा पोत्दार / **ज्ञानदेव** : पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे / **हरि नारायण आपटे** : रामचंद्र भिकाजी जोशी / **केशवसुत** : प्रभाकर माचवे/**नामदेव** : माधव गोपाल देशमुख / **नरसिंह चिन्तामण केलकर** : रामचन्द्र माधव गोले / **श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर** : मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे / **फ़कीरमोहन सेनापति** : मायाधर मानसिंह / **राधानाथ राय** : गोपीनाथ महन्ती / **सरलादास** : कृष्णचंद्र पाणिग्राही / **जाम्भोजी** : हीरालाल माहेश्वरी / **सूर्यमल्ल मिश्रण** : विष्णुदत्त शर्मा / **बाणभट्ट** : के० कृष्णमूर्ति / **भवभूति** : गो० के० भट / **कल्हण** : सोमनाथ दर / **सचल सरमस्त** : कल्याण बू० आडवाणी / **शाह लतीफ़** : कल्याण बू० आडवाणी / **भारती** : प्रेमा नन्दकुमार / **इलंगो अडिगल** : मु० वरदराजन / **कम्बन** : एस० महाराजन / **पोतन्ना** : दिवाकर्ल वेंकटावधानी / **वेदम वेंकटराय शास्त्री** : वेदम वेंकटराय शास्त्री (कनिष्ठ) / **गुरजाड** : नार्ल वेंकटेश्वर राव / **वीरेशलिंगम** : नार्ल वेंकटेश्वर राव / **वेमना** : नार्ल वेंकटेश्वर राव / **ग़ालिब** : मुहम्मद मुजीब ।